Chapter - 1

प्रथम परिच्छेद

नयी कविता की पृष्ठभूमि

प्रत्येक युग नयी परिस्थितियां, नयी मान्यताएं और नये विचार लेकर आता है, जिसके अपने आदर्श, सिद्धान्त और मानदण्ड होते हैं और जो एक नये साहित्य को जन्म देता है। प्रतिक्रिया और परिवर्तन जगत का शाश्वत नियम है। बहुत समय तक जब कोई प्रवृत्ति अपना अधिकार जमाये बैठी रहती है तब उस पर प्रतिक्रिया होने लगती है। भाषा के सम्बंध में भी यह तथ्य है। भाषा चूंकि एक सामाजिक यथार्थ है, समाज के बदलाव के साथ में भी बदलाव आना स्वाभाविक है। कवि भाषा को अधिक से अधिक अपने वातावरण तथा अपनी अनुभूतियों के अनुरूप बनाने की कोशिश करता है। आज के कवि के लिए भाषा एक माध्यम ही नहीं है बल्कि 'भाषा जीवन और समाज का एक प्रबल शस्त्र है, यदि कविता की भाषा दुर्बोध रही तो उसका कर्म अर्थात् लड़ने में मनुष्य का सहायक होना अधूरा रह जाता है।'[1] शब्द में अधिक अर्थ या निहित अर्थ से अतिरिक्त अर्थ पाने की लालसा ही कवि को भाषा के प्रति विद्रोह करने को जाग्रत करती है और विवश होकर कवि व्यंजना की नवीन प्रणालियों को ढूंढता है। व्यंजना भाषा की साधारण अर्थ विधायिनी शक्ति की सहायता करती है। अज्ञेय का कहना है कि " यह क्रिया भाषा में निरन्तर होती रहती है और भाषा विकास की एक अनिवार्य क्रिया है, चमत्कार मरता रहता है और चमत्कारिक अर्थ अभिधेय बनता रहता है या यों कहें कि कविता की भाषा निरन्तर गद्य की भाषा हो जाती है। इस प्रकार कवि के सामने हमेशा चमत्कार के सृष्टि की समस्या बनी रहती है। वह शब्दों को नया संस्कार देता चलता है और ये संस्कार प्रायः सार्वजनिक मानस में पैठकर फिर ऐसे हो जाते हैं।"[2] आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा के आलोचकों ने यह स्पष्ट उल्लेख किया है कि साहित्य में कथ्य अथवा दृष्टिकोण

के बदलाव के साथ-साथ भाषा में स्वत: बदलाव आता है इसे काव्य भाषा का विकास कहा जा सकता है । डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने काव्यभाषा के स्वरूप को विश्लेषित करते हुए कहा है कि 'भाषा के जिस रूप में साहित्य-सर्जन होता रहता है कुछ समय के उपरान्त अनवरत व्यवहार से उसकी सम्भावनाएं चुक जाती हैं और वह भाषा रूप जड़ हो जाता है, अत: बदलते हुए नये युग के यथार्थ से जब वह अपने आपको संपृक्त करने में असमर्थ पाती है तो उसके विकास की मंजिलें पूरी हो जाती हैं और उसका गत्यात्मक स्वरूप क्रमश: जड़ हो जाता है जिसे तोड़ने के लिए कवियों और लेखकों को नए पन की आवश्यकता होती है । आचार्य शुक्ल भी इसका उल्लेख अपने इतिहास ग्रन्थ में करते हैं । लेखक की दूसरी महत्वपूर्ण स्थापना यह है कि इस नए पन को गढ़ने के लिए भाषा में दो व्यापार सन्निहित होते हैं अमूर्तन और प्रतीकन । ये प्रविविक्ति प्रक्रियाएं भाषा को गतिशील और जीवित बनाती हैं ।'[3] युगानुरूप कविता की भाषा भी अपना स्वरूप स्वाभाविक गति से बदलती चली जाती है । 'कविता के नए माध्यम यानी नए ढांचे और नये छंद कविता की नवीनता के प्रमाण होते हैं । उनसे युग मानस की जड़ता टूटती है, उनसे यह आभास मिलता है कि काव्याकाश में नया क्षितिज उदय ले रहा है । जब कविता पुराने छंदों की भूमि से निकलकर नए छंदों के भीतर पांव धरती है, तभी यह अनुभूति जगने लगती है कि कविता कहीं तक सीमित नहीं है जहां तक हम उसे समझते आये हैं; और भी नयी भूमियां हैं जहां कविता के चरण पड़ सकते है। नए छंदों से नयी भाव दशा पकड़ी जाती है । नये छंदों से काव्य को नयी आयु प्राप्त होती है ।'[4] कविता तथा उसकी भाषा में नया पन लाने का प्रयास आचार्य शुक्ल तथा द्विवेदी जी के समय से ही जारी रहा । अपने इतिहास ग्रन्थ में उपर्युक्त नये पन की इच्छा व्यक्त करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं-

- उस पत्रिका के प्रथम दो तीन वर्षों के भीतर ही ऐसे लेख निकले जिनमें साफ कहा गया कि अब नायिका-भेद और श्रृंगार में बंधे रहने का जमाना नहीं है। संसार में न जाने कितनी बातें हैं जिन्हें लेकर कवि चल सकते हैं। इस बात पर द्विवेदी जी बराबर जोर देते रहे और कहते रहे कि कविता के बिगड़ने और उसकी सीमा परिमित हो जाने से साहित्य पर भारी आघात होता है, द्विवेदी जी सरस्वती के संपादन काल में कविता में नयापन लाने के बराबर इच्छुक रहे। नयापन लाने के लिए वे नए- नए विषयों को नया पन या नानात्व प्रधान समझते रहे और छंद, पदावली, अलंकार आदि का नयापन उसका अनुगामी।[5] किसी नये शब्द, नये तथ्य, या नये विषय को खोजने का अर्थ ही है किसी नये अनुभव खण्ड अथवा वास्तविकता के किसी नये पहलू की खोज। यही नये पहलू की खोज, प्रत्येक युग की काव्य भाषा के संधान का विषय रहा है। पुरानी भाषा जैसे ही परिवर्तित समाज के लिए अनुपयुक्त हो जाती है तुरन्त नयी भाषा नए सन्दर्भों को खोजने एवं जन्म देने लगती है, पर इन नये संवेदनों को खोज पाना या पकड़ पाना कोई आसान काम नहीं है। सभी कवि सभी समय समाज में व्याप्त तनावपूर्ण उन द्वन्दात्मक सम्बन्धों को उसी रूप में अभिव्यक्त कर पाने में समर्थ नहीं होते। हर एक रचनाकार अपने चिंतन एवं अनुभव को नयी टैकनीक तथा नयी भंगिमाओं के साथ अभिव्यक्त करना चाहता है जिसके लिए उसे भाषा की समस्या से गुजरना पड़ता है। भाषा की समस्या से०गुजरना०पड़ता०है०। सभी श्रेष्ठ कवियों के समक्ष विद्यमान रहती है। कवि की प्रतिभा केवल नयी वस्तु का उन्मेष नहीं करती वरन् उसके अनुरूप नयी भाषा का विन्यास भी करती है।[6] मनुष्य के विकास के साथ- साथ भाषा भी विकसित होती रहती है। भाषा के विकास की यह क्रिया हजारों वर्षों से चली आ रही है। द्विवेदीकाल में भी अनेक कवि ब्रजभाषा में काव्य रचना करते थे जिनमें प्रसाद का नाम भी उल्लेखनीय है। डा० रामस्वरूप

चतुर्वेदी का कहना है कि 'प्रसाद जी प्रारम्भ में खड़ी बोली के प्रयोग की ओर अग्रसर रहे। 'प्रेम पथिक का आठ वर्ष बाद खड़ी बोली में रूपान्तर इनका एक पुष्ट प्रमाण है। ब्रजभाषा काव्य रचना में संलग्न होकर भी वे खड़ी बोली का ही प्रयोग अधिकतम मात्रा में करते रहे। इसलिए कतिपय समीक्षक प्रसाद की प्रारम्भिक कविताओं की भाषा को खड़ी बोली के ही अन्तर्गत स्वीकार करते हैं।'[17] प्रसाद जी रीतिकालीन संस्कारों से होकर गुजरे थे यही कारण है कि उनकी प्रारम्भिक कविताओं में मध्ययुगीन कलागत प्रवृत्तियों का समाहार यत्र-तत्र हुआ है। भाषा के परिष्कार की दृष्टि से खड़ी बोली हिन्दी काव्य भाषा के विकास में रामनरेश त्रिपाठी का भी पर्याप्त योगदान रहा है। भाषा सम्बंधी शुद्धता के विषय में जो आग्रह आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का रहा है उसे त्रिपाठी जी ने पूरा करके दिखाया। इसके पूर्व खड़ी बोली प्रयोगकर्ताओं की भाषा व्याकरण और शैली दोनों दृष्टियों से त्रुटिपूर्ण थी। विकृत किए गए शब्द और दूषित वाक्य विन्यास इन कवियों में बराबर मिलते रहे जिसका कारण जान-बूझकर मार्दव उत्पन्न करने के लिए ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग होता था। त्रिपाठी जी की काव्य-भाषा इस प्रकार के दोषों से मुक्त रही। उनकी रचनाओं में वाक्य-विन्यास की सहजता, अकृत्रिमता तथा सही ध्वनियों का चुनाव काफी आकर्षक एवं प्रभावशाली रहा है। त्रिपाठी जी के रचनाकाल में खड़ी बोली काव्य भाषा के विकास के साथ-साथ छायावादी भंगिमाओं का भी विकास हुआ। उनके खंड काव्यों की काव्य भाषा का रूप अत्यन्त निर्मल होने के साथ-साथ वह आधार भी है जिस पर छायावादी काव्य भाषा बनती है। भाषा का व्यक्तित्व किस प्रकार विकासात्मक है यह छायावादी काव्यभाषा से पता चल जाता है। ब्रजभाषा के खड़ी बोलीकरण से लेकर प्रसाद जी ने

कामायिनी की भाषा तथा उस समय की साहित्यिक परम्परा को समेट कर तथा बुनकर नयी छायावादी भाषा का स्वरूप निर्माण किया । छायावादी समीक्षकों तथा कवियों ने कविता की भाषा पर नये सिरे से विचार किया । द्विवेदी युग की शुष्क इतिवृत्तात्मक भाषा के स्थान पर कोमल एवं सूक्ष्म भावों को व्यक्त करनेवाली काव्य भाषा का निर्माण हुआ ।

भाषा की इस नवीनता का कारण उस युग की काव्य सर्जना की परिस्थितियों में खोजा जा सकता है । भाषा निर्माण की चर्चा के प्रसंग में प्रसाद ने 'शब्दों के व्यवहार' पर बल दिया । शब्दों के व्यवहार का उल्लेख करते हुए उन्होंने शब्द शक्तियों की अनेक विशेषताओं को भी आवश्यक बतलाया ।[१८] निराला ने भी काव्य भाषा के इस आदर्श को स्वीकार करते हुए 'भाव संपन्न भाषा' को महत्व दिया ।[१६] महादेवी जी छायावाद को खड़ी बोली का कटा-छटा एवं सुपरिष्कृत रूप मानती हैं । उनका कहना है कि "छायावाद के नये छंद बन्धों में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खड़ी बोली की सात्विक कठोरता नहीं सह सकता था । अतः कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप तोल और काट-छांट कर तथा कुछ नये गढ़कर अपनी सूक्ष्म - भावनाओं को कोमल कलेवर दिया ।"[१०] मुख्यतः द्विवेदी युगीन कवियों का ध्यान भाषा की शुद्धता पर रहा है । राष्ट्रीय आन्दोलनों से सीधे प्रभावित होने के कारण इनका काव्य उस युग की सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक गतिविधियों का वाहक हो गया । मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, और रामनरेश त्रिपाठी की साहित्यिक निर्मितियां अभिधात्मक अधिक हैं । इसीलिए उनमें भावना और कल्पना का अधूरा प्रयास परिलक्षित होता है ।

वस्तुत: खड़ी बोली काव्य भाषा का रचनात्मक विकास छायावादी युग से ही प्रारम्भ होता है। इसके पहले भाषा की व्याकरणिक शुद्धता और प्रतिमानीकरण चिन्ता का विषय रहा है। छायावादी कवियों में कुछ तो पुनर्जागरणकालीन संस्कृत चेष्टा के कारण और कुछ काव्य भाषा की अपनी आन्तरिक जरूरतों के कारण आरम्भिक रचनाकाल में संस्कृत की तत्सम् पदावली को प्रश्रय देते रहे। इनकी काव्य भाषा संस्कृत पदावली पर आधारित होने के कारण, परम्परागत प्रतिष्ठा और बनी बनाई अर्थ-छायाओं की सुविधा थी। डा० साही का कहना है कि "छायावाद ने संस्कृत शब्दों का प्रयोग उसके अभिधार्थ या लक्षणार्थ के लिए नहीं किया, बल्कि अलग एक प्रभामंडल के लिए किया। जिसकी शर्त ही यही थी कि वह ठेठ शब्दों के स्रोत में ही अलग दीखे।"[११] डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी खड़ी बोली को छायावादी काव्यभाषा का विकास मानते हुए कहते हैं कि -"काव्यभाषा के रूप में खड़ी बोली का वास्तविक परिष्कार छायावाद युग में होता है, भाषा में लाक्षणिकता, वक्रता और अनेक प्रकार की भंगिमाएं विकसित की जाती हैं। जिनके सहारे बात को सीधे कहने के स्थान पर उसे सम्प्रेषित करने की चेष्टा की जाती है, शब्दों के अर्थ विस्तार में से इच्छित और वैकल्पिक अंशों को ग्रहण किया जाता है। जो काव्यभाषा बनने की पहली आवश्यक शर्त है जिससे कि भाव चित्रों का संघटन संभव होता है।"[१२] निश्चित रूप से छायावादी युग सांस्कृतिक पुनरुत्थान और पुनर्मूल्यांकन का युग है, भाव एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से छायावादी कविता एक गंभीर अर्थवत्ता लिए हुए है और उसमें ऐसे तत्वों का सन्निवेश है जो उसे दो विभिन्न समानान्तर चलने वाली धाराओं से पृथक करता है। ये वे ही तत्व हैं जो पंत को नयी सांस्कृतिक कल्पनाओं की ओर ले जाते हैं —

मुक्त जहाँ मन की गति जीवन में रति
भव मानवता में जनजीवन परिणति
संस्कृतवाणी भाव कर्म से संस्कृत मन
सुन्दर हो जन-वास, वसन, सुन्दर वन। [१३]

द्विवेदी युगीन रचना पद्धति धीरे- धीरे जब बंधी-बंधाई लीक पर चलने लगी थी तो उसी समय से अभिव्यक्ति के नए पन की खोज प्रारम्भ हो गयी थी ।

पंत जी का कहना है कि -"छायावादी काव्य ने खड़ी बोली का परिमार्जन कर उसे माधुर्य ओज तथा अभिव्यंजना की क्षमता प्रदान की ।" [१४] पंत जी का काव्य नवीन कल्पना छवियों का भण्डार है । वे कहते हैं कि- "मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूं ।" [१५] शायद यह कल्पना-शीलता पंत तथा अन्य छायावादी कवियों ने पश्चिम के स्वच्छन्दतावाद से ग्रहण किया है । भाषा के लाक्षणिक प्रयोग से सम्पन्न उनकी कविता व्यंजनात्मक संकेतों और निगूढ़ ध्वनि- संस्पर्शों की ओर बढ़ गयी है । निराला जहाँ प्रयोग की विविध भूमिकाओं को अपनाते हुए भाषा और अभिव्यंजना की अनेक विरोधी योजनाओं की ओर उन्मुख हुए हैं वहीं पंत की काव्यभाषा शालीनता और अभिजात्य गुणों से मंडित है । पंत जी चाहते थे कि यह खड़ी बोली अभिजात्य गुणों से मंडित होकर राष्ट्रभाषा बने । राष्ट्रभाषा से उनका तात्पर्य मनुष्यों की भाषा से है जो हमारे देश की मानसिक दशा का मुख दिखलाने के लिए आदर्श हो सके ।" [१६] उनका कहना है कि -"यह भाषा ही उनके काव्य की भाषा बनने का संकल्प लिए हुए है जिसमें नये हाथों का प्रयत्न, जीवित सांसों का स्पन्दन, आधुनिक इच्छाओं के अंकुर, वर्तमान

के पदचिन्ह, भूत की चेतावनी, भविष्य की आशा अथ च नवीन युग की नवीन सृष्टि का समावेश है। उसमें नए कटाक्ष, नए रोमांच, नए स्वप्न, नया हास, नया रूदन, नया हृत्कंपन, नवीन वसंत, नवीन कोकिलाओं का गान।"[१७] काव्यभाषा के बहुरंगी संयोजन में पंत, कीट्स, शैली, वर्ड्सवर्थ और टैनिसन से प्रभावित होते दिखायी देते हैं। टैनिसन के ध्वनि बोध का तथा कीट्स के शिल्प वैचित्र्य का इन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इन कवियों के प्रभावों का उल्लेख करते हुए पंत ने स्वयं कहा है कि -" काव्य संगीत में व्यंजनों की योजना से शक्ति तथा चित्रात्मकता और स्वरों की सहायता से सूक्ष्मता तथा मार्मिकता आती है। इसका ज्ञान मुझे अंग्रेजी कवियों के रूप शिल्प के बोध से ही प्राप्त हुआ। रीति काव्य में अनियन्त्रित अनुप्रासों की पुनरुक्ति केवल एक शाब्दिक चमत्कार बनकर रह जाती है। अनुप्रासों के विशिष्ट संयमित प्रयोग से किस प्रकार भावनाओं की व्यंजना अधिक प्रेषणीय बन सकती है यह मैंने अंग्रेजी काव्य के अध्ययन से सीखा।"[१८] काव्य भाषा के विकास में पंत जी निरन्तर प्रयत्नशील रहे। खड़ी बोली को उन्होंने एक नयी अभिव्यंजना शक्ति प्रदान की।

आचार्य शुक्ल का कहना है कि -"पंत का भाषा सम्बंधी दृष्टिकोण पवित्रतावादी है। भाषा की परिष्कृत और संस्कारित शब्द राशियों के चयन में ही वे रुचि रखते हैं। चित्रमयी भाषा, लाक्षणिक वैचित्र्य, अप्रस्तुत विधान, इत्यादि की विशेषताएं प्रचुर परिमाण में भरी पायी जाती हैं।"[१९] पंत जी की काव्य भाषा के मुख्यत: दो रूप वे मिलते हैं। एक तो वह है जो मध्य युग की अतिवादी कविताओं को छोड़कर अन्य सभी रचनाओं में मिलता है और दूसरा जो लोक जीवन से बंधी हुई ग्राम्या आदि रचनाओं में मिलता है।

वैसे पंत जी की काव्य भाषा के कई मोड़ दिखायी देते हैं । पहला प्रस्थान वीणा से प्रारम्भ होता है । जिसमें ग्रंथि, पल्लव आदि कविताएं संग्रहीत हैं । आगे चलकर परिवर्तन कविता से उनकी काव्यभाषा एक नया मोड़ लेती है जिसमें संस्कृत गर्भित शब्दों की बहुलता देखी जा सकती है । पंत की भाषा का तीसरा मोड़ ग्रामीण एवं लोकजीवन की भाषा से प्रारम्भ होता है । जिसमें कवि पंत को निरर्थक प्रयोग में लाये जानेवाले वाणी-सजावट के भार रूप अलंकारों से चिढ़ है । कवि को ऐसी वाणी चाहिए जिसकी आवाज प्रत्येक जन तक पहुंच सके । और जो मानव जीवन के दु:ख-दर्द तथा यथार्थ अनुभूतियों को समेटे हुए हो ।

— तुम रूप कर्म से मुक्त, शब्द के पंखभार
कर सको सुदूर मनो नभ में जन के विहार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार ।" [20]

अरविन्दवादी दर्शन से प्रभावित होने के कारण इन कविताओं में कल्पना छवियों के निर्माण की शक्ति भी नहीं दिखायी देती । इसके विपरीत उसकी परिणति मृतप्राय और संवेदना हीन भाषा के रूप में होती है । इसे हम भाव विहीन भाषा भी कह सकते हैं । पंत की काव्य भाषा का चौथा मोड़ प्रतीकात्मक है जो कला और बूढ़ा चांद से प्रारम्भ होता है । यहां उनकी भाषा की संभावनाओं में खुलापन परिलक्षित होता है । इसमें आए हुए भावचित्र कवि के अन्तर की गहराइयों से सम्बद्ध हैं । भाषा सांकेतिक होते हुए भी अनुभव गम्य है । पंत की काव्य भाषा का अन्तिम मोड़ लोकायतन से प्रारम्भ होता है यहां सांकेतिकता के स्थान पर वर्णनात्मकता का प्राधान्य है ।

संभवत: कवि ने इसे जन-सामान्य के लिए लिखा है। नयी परम्परा का बीज बोकर भी कवि चिन्तित है। उसके सामने वह भाषा नहीं है जिसमें शब्द संगीत हो। न तो छंद ही है और न ही अर्थ लय, रस, अलंकरण कुल मिलाकर भाषा की नग्नता उसे गहरे अर्थों में सालती है। वह ऐसी कविता करने में लजाता भी है -

- कहां शब्द संगीत आज ? (लिखने में लगती लाज) छंद तुक के अंकुश से ऊब। (गया हो गज गोपद में डूब)। अर्थ की लय में श्रवणातीत। हुआ रस मग्न शब्द संगीत। अलंकरणों से नग्न कंठ स्वर कुंठा मग्न।'[२१]

नयी रचना पद्धति प्रारम्भ में अविकसित दशा में होती है यह नितान्त स्वाभाविक ही है। कवि को संकोच इस बात का होता है कि वह उसे पूरी तरह नहीं ढाल पाया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'कला और बूढ़ा चांद' से ही एक नयी कविता की शुरुआत हो गयी थी। डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि 'कला और बूढ़ा चांद' सहज परिवर्तन का वाचक न होकर विकास की एक स्थिति है। नयी कविता के शिल्प तथा अन्य उपकरणों से अपने को सम्पृक्त रखते हुए भी यह कवि अपनी काव्य चेतना का आभ्यन्तरिक प्रमाण है।'[२२] चतुर्वेदी जी ने पंत की 'कला और बूढ़ा चांद' कविता को नयी कविता के विकास की सीढ़ी मानते हुए कहा है कि 'पंत की नयी कविताओं की विशेषता एक और है कि इनमें चिंतन ने कला को आहत नहीं होने दिया है। 'कला और बूढ़ा चांद' की अधिकांश कविताओं में चिन्तन का स्वर प्रधान है। पर इससे उनका मूल कवित्व विकृत नहीं हुआ है। एक बात कला और बूढ़ा चांद के शिल्प को लेकर और कहना चाहूंगा कि इन कविताओं में

`नयी कविता के कुछ उपकरणों का प्रयोग अवश्य है। पर मूलत: उन्मुक्त अभिव्यक्ति होने के कारण उनमें एक विशिष्ट भावनात्मक प्रवाह है। नयी कविता प्रवाह को इस रूप में स्वीकार नहीं करती। उसकी अन्यात्मक व्यवस्था में ठहराव भी महत्वपूर्ण है।'[23] काव्य भाषा विकसित होकर किस प्रकार अपना एक नया रास्ता चुन लेती है उपर्युक्त मत से स्पष्ट है। भाषायिक स्तर पर निराला में भी विभिन्नता है। एक ही भाषा रूप को अपने समूचे काव्य का माध्यम स्वीकार करना उनकी उन्मुक्त और स्वतन्त्र प्रकृति के प्रतिकूल था। इसीलिए अपने काव्य के विविध मोड़ों पर उन्होंने न केवल काव्य विषय बदला है बल्कि भाषा का रूप भी बदला हुआ दिखायी देता है। परिमल और गीतिका की भाषा में भी पर्याप्त अन्तर परिलक्षित होता है। `अनामिका`, राम की शक्ति पूजा तथा तुलसीदास की भाषा स्पष्ट ही `बेला` की गजलों की भाषा से भिन्न प्रकार की है। `नये पत्ते` की भाषा में ग्रामीण क्षेत्रों तथा दैनिक, राजनैतिक शब्दावलियों की बहुलता है। पन्त की भाषा का अभिजात्य तथा प्रसाद की भाषा का माधुर्य निराला की रचनाओं में नहीं मिलता। परन्तु जो मार्दव निराला की काव्य भाषा में मिलता है वह अन्य छायावादी कवियों में नहीं मिलता। निराला ने कतिपय अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है और पंत ने भी पंत के अंग्रेजी शब्द जहां वस्तुओं और फूलों के नामों से सम्बंधित है वहीं पर निराला के शब्द सम-सामयिक राजनीति और समाजशास्त्र से सम्बद्ध हैं। भाषा प्रयोग के स्तर पर प्रसाद, पंत और निराला में पर्याप्त वैभिन्य है। निराला के काव्य विषयों की विविधता देखते हुए उनके जीवनानुभवों की व्यापकता स्वयं स्पष्ट हो जाती है। यौवन के उत्कर्ष काल में निराला शक्ति, ओज, संघर्ष, क्रान्ति, विद्रोह, जीवन की शृंगारिकता और सौन्दर्य चेतना में आपाद मस्तक डूबे रहे किन्तु उनका संकर्ष ज्यों-ज्यों बढ़ता गया उनके काव्य में खीझ, आक्रोश, क्षोभ और व्यंग्य,

कूटोक्तियों का वृक्ष खींचने लगा और निराला जी ने सामाजिक जीवन को हास्य और व्यंग्य के सहारे उछाल देना चाहा ।"[२४] छोटी-छोटी शब्द राशियों से युक्त निराला की काव्य भाषा में एक दमक है । तीन वर्णों से युक्त शब्द राशियों का प्रयोग अधिकतर इनकी रचनाओं में मिलता है । वैविध्य होने के कारण निराला की काव्य भाषा में सभी गुणों का समावेश हुआ है । वैसे ओज की प्रधानता देखी जा सकती है । कल्पना छवियों के निर्माण में भी निराला अन्य छायावादी कवियों से सशक्त हैं । पंत की भांति निराला खण्ड चित्रों या उपमाओं से ही सन्तुष्ट नहीं होते प्रारम्भ से ही वे सम्पूर्णता के आकांक्षी हैं ~~बल्कि-अतिशय-स्वाभाविक~~ उनके भाव एवं कल्पना चित्र प्रत्येक कविता को न केवल एक परिपूर्ण व्यक्तित्व सौंपते हैं बल्कि अतिशय स्वाभाविक और यथार्थपरक अनुभूतियों को जगाने में सक्षम भी हैं । निराला की भाषा जिस प्रकार बहुरंगिनी है उसी प्रकार उसकी कल्पना छवियां भी समाज के विभिन्न पक्षों से ली गयी है ।

शृंगार पूर्ण चित्रों में जहां प्राकृतिक अप्रस्तुतों का बाहुल्य है वहीं दैनंदिन जीवन की उत्पीडक छवियां भी विद्यमान हैं । निराला की काव्य भाषा जहां संगीत प्रधान है वहीं पर स्वर और अर्थ के सामंजस्य के साथ-साथ राग-रागिनियों का भी सुन्दर सामंजस्य मिलता है । भाषा को विस्तार देनेवाला उनका यह व्यक्तित्व न केवल छायावादी और प्रगतिवादी कवियों के लिए अपितु नये कवियों के लिए भी आदर्श का कार्य करता है । निराला ने अलंकारों का प्रयोग वाणी की सजावट के लिए ही नहीं किया अपितु भावों की असफल अभिव्यक्ति के लिए भी -

"अलंकार-लेशरहित, श्लेष-हीन, शून्य विशेषणों से नग्न
नीलिमा सी व्यक्त ।
भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी ।
मुक्त छंद । सहज प्रकाशन वह मनका ।
निज भावों का प्रकट अकृत्रिम चित्र ।"[२५]

काव्यभाषा की इस अलंकार विहीनता की प्रशंसा इस युग के साहित्य समीक्षकों ने भी किया । 'उत्कृष्ट कविता में अलंकार वही काम करते हैं जो दूध में पानी । कविता फीकी पड़ जाती है वह अपना सत्य स्वरूप खोकर नकली अपराध धारण करती है और अनेक प्रकार से पतित होती है ।"[२६] कविता जिस स्तर पर पहुंचकर अलंकार विहीन हो जाती है वहां वह वेगवती नदी की भांति हाहाकार करती हुई हृदय को स्तंभित कर देती है । उस समय उसके प्रवाह में अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि न जाने कहां बह जाते हैं और सारे सम्प्रदाय न जाने कैसे मटियामेट हो जाते हैं ।"[२७]

लोकजीवन के प्रति अधिक उन्मुख होकर निराला ने 'कुकुरमुत्ता', अणिमा, बेला, नयेपत्ते, जैसी रचनाएं कीं जिनमें अलंकारों का अभाव देखा जा सकता है । नवगति, नवलय, तालछन्द नव' के आन्दोलन की नींव निराला ने ही डाली थी । छायावाद युगीन भाषा में सृजनशीलता का प्रथम बार सक्रिय विकास हुआ परन्तु एक 'निराला' को छोड़कर खड़ी बोली के निजी सत्व (प्रकृति) को किसी ने यथेष्ट रूप में नहीं पहचाना ।"[२८] आधुनिक हिन्दी कविता की नयी प्रवृत्तियों तथा काव्य भाषा के विकास में निराला का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । प्रत्येक क्रान्तदर्शी कवि अथवा विचारक अपने

समय से आगे का सन्देशवाहक होता है। कवि का काम समकालीनता को समर्थ आयाम देने के साथ-साथ भविष्य को भी एक नये रूप में परिवर्तित करने का है।

कुकुरमुत्ता को हम आधुनिक हिन्दी कविता का पहला प्रामाणिक दस्तावेज कह सकते हैं। वस्तुत: कवि यहां शोषित- शोषक के प्रतीक के परे एक नयी काव्य- व्यवस्था का निर्माण कर रहा है।"[२६] हिन्दी कविता में 'निराला' यह सब सहज रूप में समयानुसार लिख रहे थे -

" मैंने 'मैं ' शैली अपनाई
देखा एक दु:खी निजभाई,
दु:ख की छाया पड़ी हृदय पर
फट उमड़ वेदना आयी।"[30]

'निराला की कविता अनुभूत अन्तर्विरोधों की कविता है, अन्तर्विरोधों का तनाव ही उनकी सर्जनात्मक गतिशीलता को लगातार नया विस्तार देता है।"[३१] निराला जी की प्रगतिशील कही जानेवाली कविताओं की भाषा शैली और छन्द विधान अधिक सहज और व्यावहारिक हैं। छायावाद के तुरन्त बाद आनेवाले कवियों ने भी छायावादी कवियों की भाषा सम्बंधी उपलब्धियों को समझा। दिनकर ने भी इस बात को महसूस किया कि उनकी इस बौद्धिक शक्ति का जितना परिचय छन्दों के नये विधान, शब्दों के नवीन चयन और भाषा के नूतन श्रृंगार में मिला उतना और कहीं नहीं। "छायावाद युग की सबसे बड़ी देन यह रही कि उसके यन्त्रगृह में एक समय कर्कश समझी जानेवाली खड़ी बोली गलकर मोम हो गयी।"[३२] दिनकर ने यह भी स्वीकार किया है कि-

'पंत और निराला ने कविता की जो भाषा प्रस्तुत की वह ठीक उसी रूप में आगे के कवियों को स्वीकृत नहीं हुई किन्तु मेरी या बच्चन की कविताओं की भाषा भी छायावादी युग के प्रयोगों से शिक्षा लेकर तैयार हुई है।'[33] दिनकर के इस कथन से साफ जाहिर है कि इन्होंने छायावाद युगीन काव्य भाषा की शक्तियों से शिक्षा ग्रहण की तथा उसके दोषों से अपने को बचाया। दिनकर अभिव्यक्ति की सफाई तथा सुस्पष्टता के कायल थे उन्होंने कहा कि - ' मैं सौन्दर्य से अधिक सुस्पष्टता का प्रेमी हूं। कविताओं में अनुभूतियों की बारीकियां या ऊंचे- ऊंचे भाव मुझे तभी जंचते हैं जब वे अनुरूप शैली में स्वच्छता से अभिव्यक्त किए गये हैं।'[34] दिनकर ने छंदों के अतिरिक्त काव्य भाषा के अन्य उपादानों जैसे चित्र, रूपक, उपमान आदि का उल्लेख किया है, जिसके बिना काव्य भाषा समृद्ध नहीं हो सकती। चित्र के विषय में दिनकर का मत है कि -' चित्र कविता का अत्यन्त महत्वपूर्ण गुण है, प्रत्युत कहना चाहिए कि यह कविता का एक मात्र शाश्वत गुण है जो उससे कभी भी नहीं छूटता। कविता और कुछ न करे किन्तु चित्र की रचना वह अवश्य करती है और जिस कविता के भीतर बनने वाले चित्र जितने ही स्वच्छ यानी विभिन्न इन्द्रियों से स्पष्ट अनुभूत होने के योग्य होते हैं वह कविता उतनी ही सफल और सुन्दर होती है।'[35] दिनकर, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि की भाषा में छायावादी काव्य भाषा का पुट होने पर भी वह छायावादी कवियों से कुछ पृथक प्रतीत होती है यद्यपि इन उत्तर छायावादी कहे जानेवाले कवियों की भाषा छायावादी काव्य भाषा का ही विकसित रूप है। 'छायावादी काव्य मुख्यतः बौद्धिक संवेगों का काव्य था, इसलिए अपने भाषा- प्रयोग में वह रचनात्मक अनुभूतियों का सूक्ष्म छायाभास और भाव कल्पना का चित्रात्मक

विस्तार तो ला सका, पर अपने यथार्थ परिवेश से क्रियात्मक संपृक्ति न होने के कारण उसमें अनुभूति की आयाम युक्त गहराई नहीं आ पाई - ---- अगला साहित्यिक अभियान मनुष्य और वस्तु जगत के सम्बन्धों की भाषा की खोज के रूप में सामने आया । यह प्रवृत्ति उत्तर छायावादी काल में ही शुरू हो गयी थी, इसीलिए बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि की भाषा में छायावादी भावबोध का खासा अंश होते हुए भी यथार्थ मानव अनुभूतियों और उसके रचना शिल्प के बीच उतना बड़ा अन्तराल नहीं है जितना छायावाद में मिलता है । इस दृष्टि से यदि यह कहा जाय कि उत्तर छायावाद, छायावाद और प्रयोगवाद के बीच का वह सेतु है जिसके माध्यम से छायावादी काव्य भाषा के विशिष्ट तत्व छनकर परवर्ती साहित्य चेतना में संक्रमित हुए तो अत्युक्ति न होगी ।"[36] यही नहीं यह समय प्रगतिवाद के उद्भव का भी है । "छायावाद के दूसरे दौर में बच्चन, भगवतीचरण वर्मा, दिनकर, नवीन आदि गद्य तथा काव्य लेखकों ने किस प्रकार छायावाद का बाकी सब दस्तूर रखते हुए मैटाफिजिकल दार्शनिक मुद्रा और तज्जनित गम्भीरता को नमस्कार किया और इससे कौन से नए मोड़ पैदा हुए- क्योंकि यही समय प्रगतिवाद के उद्भव का भी है ।"[37]

रहस्यवादी प्रवृत्तियों के कारण छायावादी कविता की भाषा भी लगभग कुछ वैसी ही हो गयी थी जैसा कि मध्यकाल में । परन्तु छायावाद के उत्तराधिकारियों ने कविता को रहस्यवाद की सीमित परिधि से बाहर निकाला । उन्होंने उसे जग-जीवनोन्मुखी बनाया और साधारण मानव के उल्लास-अवसाद उनकी आशा उसकी आकांक्षा-जिज्ञासा और संवेदना को मुखरित

किया ।[३८] बच्चन के काव्य की भाषा उसके वैयक्तिकता की देन है । उनका कहना है कि 'भाषा का नव निर्माण वैयक्तिकता से होता है । अपनी वैयक्तिकता (इनडिविज्वैलिटी) से मैंने भाषा को अन्वेषित किया है ।[३९] बच्चन की काव्य भाषा में परम्परा सौष्ठव है वह साहित्यिक होते हुए भी बोल चाल के अधिक निकट है । 'कथ्य के काव्यानुभव को जीवित रखने के लिए अनेक भावावेगों का अन्त कवि को सहना पड़ता है । इस समस्त आवेग-संयमन या भावात्मक चयन में कवि को सबसे बड़ा बल शब्दों के रूप और गति की पहचान कर सधी क्षमता और दो टूक सफाई के साथ उनके प्रयोग का होता है । लोक यथार्थ की सोंधी, सरस, सुरीली धरती और उसके भीतर अपार-अबाध सर्जना शक्ति से मचलते हुए शब्दों और जनबोलों का चयन उसे अर्थ की दोहरी व्याप्ति देता है ।[४०]

उपर्युक्त आकलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि युगानुरूप हिन्दी कविता की भाषा भी अपना स्वरूप स्वाभाविक गति से बदलती चली जाती है । छायावादी कविता ने हिन्दी कविता को जो वातावरण प्रदान किया उसी के अनुरूप उसकी काव्य भाषा सूक्ष्म- अभिव्यंजना सम्पन्न हो गयी । कोमलता की साधना में छायावादियों ने कदाचित् अति कर दी थी । छायावादोत्तर काल के कवियों ने अतिशय का त्याग कर दिया और उन्होंने छायावादी प्रयोग में से भाषा के निमित्त उतनी ही कोमलता स्वीकार की जितनी भाषा का सौन्दर्य, उसकी शक्ति को घटाये बिना संवारा जा सकता था । भाषा का छायावादोत्तर प्रयोग छायावाद और द्विवेदी युगीन भाषाओं के बीच समन्वय उपस्थित करता है । यद्यपि इस समन्वय में प्रधानता छायावाद युगीन कोमलता

की अधिक है ।"[४१] उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन नए कवियों ने अपनी सरल भाषा, स्पष्ट शैली और यथार्थ ग्राहकता के द्वारा हिन्दी काव्य परम्परा को और आगे तक विकसित किया । 'छायावाद' और 'नयी कविता' के बीच दुर्लंघ्य खाई के बजाय एक क्रमशः विकसित होती हुई परम्परा दिखलाई पड़ेगी ।"[४२] इस बात को अंचल जी भी स्वीकार करते हैं । उनका कहना है कि 'छायावादी कवियों की भाषा का ऋणी मैं अपने को आज भी मानता हूं ।"[४३] पंत, निराला, दिनकर तथा बच्चन ने जिस बोलचाल की भाषा को प्रश्रय दिया वही काव्य भाषा अज्ञेय की भी कविता का आधार बनी । परन्तु अन्तर इस बात को लेकर है कि अज्ञेय की काव्य भाषा इन कवियों की भाषा से कहीं अधिक स्पष्ट, विकसित एवं रागात्मक प्रतीत होती है । उनके अनुसार अच्छी भाषा लिख पाना अपने आप में एक उपलब्धि है । अच्छी भाषा लेखक की संवेदना को निश्चय ही ऊपर उठाएगी । अच्छी भाषा महज अच्छे-अच्छे शब्दों का प्रयोग नहीं है वरन् अच्छे शब्दों का संगत प्रयोग है । बोल-चाल की भाषा होने के नाते उसमें अलंकृति का अभाव है । लोक जीवन की शब्दावली तथा मुहावरों का अतिशय प्रयोग ही उसे छायावादी काव्य भाषा से अलग करता है । उन्होंने संकेत भी दिया है कि उनके द्वारा प्रयुक्त ये शब्द मात्र शब्द नहीं हैं वरन इनके माध्यम से एक नयी काव्य संवेदना का रूप निर्धारित हुआ है । क्षितिज, रश्मि, उसपार, सजनि, परदा, तरंग, आंसू, अप्सरा के लोक से भिन्न यह दुनिया हिन्दी कविता में किसी हद तक अज्ञेय के माध्यम से अनुभूत हुई है । प्रगतिवाद इसकी पृष्ठभूमि है और नयी कविता का यह स्रोत है ।"[४४] अज्ञेय ने साहित्यिक संवेदना को एक नई दिशा देने के लिए सबसे पहले कविता के माध्यम को तोड़ा । नए भाव संचरण के लिए छायावादी

काव्य भाषा को तोड़ा जाना भी आवश्यक हो गया था । अज्ञेय ने इस स्थिति पर विचार किया और भाषा को नया संस्कार दिया । कवि की संवेदना का मूल स्रोत विदेशी होने के आक्षेपों के बावजूद भारतीय जन-जीवन में विद्यमान है । गांव- गंवई को छूते हुए शब्द तथा वाक्य विन्यास जैसे- कुआं-गालने, ग्वाले के कमंडल की खड़कन, हरी-हरी घास, बाजरे की हरी कलगी, अनायास ही आवश्यक संगति से युक्त होकर आकर्षक प्रतीत होने लगते हैं । कुल मिलाकर अज्ञेय की कविता की भाषा सहज, लोक प्रचलित तथा परम्परागत शिल्प प्रविधि से विहीन है तथा भाषा के इस क्रान्तिकारी प्रयोग से अज्ञेय ने एक नयी अर्थवत्ता प्रदान की ही है । जिसे आगे चलकर हिन्दी की नयी कविता के नाम से जाना पहचाना गया है । अज्ञेय की प्रारम्भिक कविताओं में काव्य भाषा के कई स्तर मिले जुले दिखते हैं । कहीं पर संस्कृत निष्ठ शब्दावली और बोल-चाल की भाषा का सम्पर्क दिखायी पड़ता है । अज्ञेय तद्भव और देशज की ओर अधिक उन्मुख दिखायी देते हैं । बोलचाल की भाषा का प्रयोग सामान्य रूप से समाज में संदेश प्रेषण के लिए होता है पर अज्ञेय की कविता में अनुभव को सम्प्रेषण का आधार बनाने की कोशिश देखी जा सकती है ।

नयी कविता की भाषिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर भी प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है । सन् १९३५ में पेरिस के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार `ई०एम०फारस्टर` के नेतृत्व में `प्रगतिशील संघ` की स्थापना के लिए एक सम्मेलन हुआ और इसी वर्ष इंग्लैण्ड में भी प्रगतिशील संघ की स्थापना हुई ।

सन् १९३६ में भारत में भी मुंशी प्रेमचन्द्र जी की अध्यक्षता में पहला सम्मेलन हुआ । सन् १९३६ तक कार्ल मार्क्स का प्रभाव पूरी तरह पड़ चुका था । शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, यशपाल जैसे लेखकों ने प्रगतिवाद का गहरा समर्थन किया । प्रगतिवादी कवियों ने छायावादी रूमानियत, सर्वहारा वर्ग का अभिधेय चित्रण और अमूर्त का खुलकर विरोध किया । यह प्रगतिशील आन्दोलन की शुरुआत थी । धीरे- धीरे प्रगतिशील साहित्य का स्वरूप निखरता गया और उसका क्षेत्र विस्तृत होता गया । प्रगतिवादी काव्य पन्त, निराला की कविताओं से छिटककर धीरे- धीरे समाज के विविध पक्षों को अपनी धारा में समेटता गया ।

रूसी क्रान्ति एवं कार्ल मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, वर्ग- संघर्ष, आर्थिक संकट, द्वितीय महायुद्ध आदि के कारण बदलती परिस्थितियों के प्रभाव से तत्कालीन साहित्यकार तटस्थ न रह सके । नये रचनाकार अपनी सामर्थ्य और दृष्टि के अनुसार इस स्थिति से बाहर आने का यत्न कर रहे थे । सन् १९४२ तक काफी नया कृतित्व प्रकाश में आ चुका था । रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध की नयी रचनाएं निकल रही थीं। रामविलास शर्मा के कुछ अतुकांत `सानेट` और नयी रचनाएं `रूपाभ` में निकली थीं । जो बाद में `तार सप्तक` में संकलित हुईं ।"[४५] आवश्यक प्रतीत होता है कि इस धारा के अधिकांश कवि वही हैं, जो कालान्तर में प्रयोगवादी बन गये । रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे इसके ~~ज~~ जीवंत उदाहरण हैं । नागार्जुन, शिवमंगल सिंह `सुमन`, गिरिजादत्त शुक्ल, रांगेय राघव, भगवतीचरण वर्मा, आदि इसके सिद्ध साधक हुए । `भाषा सरल तो हो गयी, किन्तु फूहड़पन, भदेसता, असंयम, लचर विन्यास, शब्दों की फिजूलखर्ची और नीरस व गद्यमय

प्रयोग भी होते रहे । कविता में जो कलात्मकता होनी चाहिए वह प्रगतिवादी कविता में नहीं रही । नारेबाजी होने के कारण भाषा में रूखा और कड़ुवापन आ गया । 'आगे चलकर नये कवियों ने दोनों ही अतिवादों को पहचाना और एक नयी भाषा खोज निकाली जिसे काव्य भाषा कहने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए क्योंकि नयी कविता की भाषा में अपेक्षित सौन्दर्य भी है और कलात्मक निदर्शन भी ।'[४६]

प्रगतिवादी काव्य की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि वह राजनीतिक मंतव्यों से परिचालित था । मात्र सर्वहारा वर्ग का पक्षधर होने के कारण उसका जीवन दर्शन एकांगी था ।[४७] रूस का अन्धानुगमन करने के कारण प्रगतिवादियों(मार्क्सवादियों) ने १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन का विरोध किया । १९४१ में रूस तथा इंग्लैण्ड का क्रिप्स समझौता हो जाने के कारण प्रगतिवादियों ने लोकयुद्ध का नारा लगा और अंग्रेज सरकार का साथ दिया । यही नहीं उन्होंने नेता जी सुभाष बोस को 'तो (जापान का तत्कालीन प्रधानमंत्री) का कुत्ता' कहा और राष्ट्रीय आन्दोलनकारियों तथा क्रान्तिकारियों को पुलिस के साथ मिलकर गिरफ्तार कराया । आगे चलकर उन्होंने 'हक्के-खुदइरादित' का नारा लगाकर मुस्लिम लीग के साथ पाकिस्तान बनाने का समर्थन किया । फलतः प्रगतिवाद में भावाकुलता लाने की आवश्यकता प्रतीत हुई और अपने भीतर भावतत्व लिए प्रगतिवाद ही प्रयोगवाद नाम से साहित्य क्षेत्र में अवतरित हुआ । स्वयं प्रगतिवादी समीक्षकों ने ही स्वीकार किया कि 'प्रगतिवादी रचनाकारों ने मतवाद में पड़कर अपनी प्रतिभा को कुंठित कर डाला है ।'[४८] छायावाद की उत्तरकालीन अलंकृति और प्रगतिवाद की सपाट काव्य पद्धति में हिन्दी कविता के विकास के सामने जो प्रश्न उपस्थित

किए थे, प्रयोगवाद उन्हीं ऐतिहासिक प्रश्नों के दायित्व को लेकर आया था।[४६]

शिल्प जगत की सूक्ष्मता, भाषा की लाक्षणिकता एवं हिन्दी की गेय परम्परा के विरुद्ध प्रतिक्रिया के फलस्वरूप स्थूल जगत में प्राप्त पदार्थों एवं वैचारिक चिन्तनों को काव्य का विषय बनाया जाने लगा। कविता के लिए यह समय संक्रान्ति काल का है। इस समय वादों की विधा बन गयी कुछ मार्क्सवादी, कुछ समाजवादी, कुछ व्यक्तिवादी, कुछ चमत्कारवादी, इन्हीं विचारों की रगड़ से, इन्हीं बिखरती हुई साहित्यिक प्रतिभाओं को एकत्रित करके नेतागिरी का काम किया सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन `अज्ञेय` ने। इन्हें प्रयोगवाद के व्यास के नाम से अभिहित किया गया। सन् १९४३ में प्रकाशित `तारसप्तक` ने एक तहलका मचा दिया। अज्ञेय द्वारा सम्पादित `तार सप्तक` एक सामूहिक प्रयास था जिसमें गजानन माधव `मुक्तिबोध`, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय के नाम सम्मिलित थे। इन सात कवियों में सभी कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं। पाँच कवि साम्यवादी और शेष दो गिरिजाकुमार माथुर और अज्ञेय व्यक्तिवादी थे। इन्हीं बीच बिहार के नलिनविलोचन शर्मा, केसरीकुमार और नरेश की कविताओं का एक संकलन `नकेन के प्रपद्य` नाम से प्रकाशित हुआ था। स्वयं को असली प्रयोगवादी मानते हुए नकेन ने अपने को प्रयोगवादी न कहकर प्रपद्यवादी कहना उचित समझा। वस्तुत: ये कवि एक साथ प्रगतिवादी, अस्तित्ववादी, वैयक्तिकतावादी हैं और साथ ही साथ नव-स्वच्छन्दतावादी भी हैं। मुख्य बात यह है कि `अज्ञेय` जिस वाद से बचना चाहते थे उसे जबरन इन कवियों ने अज्ञेय के ऊपर थोपा। सामान्यत: सन् १९४३ में प्रकाशित एवं `अज्ञेय` द्वारा सम्पादित `तार सप्तक`

को प्रयोगशील नयी कविता की प्राथमिक अभिव्यक्ति माना जाता है ।[50]
डा० जगदीश गुप्त `अज्ञेय` को नयी कविता का पुरोधा घोषित करते हैं ।
" मैं अज्ञेय जी को आचार्य श्री की तरह केवल प्रयोगवाद का पुरोहित मात्र कहकर मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूं कि नयी कविता और नये कवि के स्वरूप -संगठन एवं शक्ति संचय में उनका अद्वितीय योग रहा है ।[५६]

दूसरा सप्तक में भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेशकुमार मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती संगृहीत हैं । ये सभी जीवन के सामान्य यथार्थ के कवि हैं, नये भावबोध को उभारने के लिए नये रूपों, प्रकारों, विचारों, भावों, नयी लय विधानों और नयी भाषा का महत्व ये सभी स्वीकारते हैं । ये सभी प्रगतिवाद अथवा प्रयोगवाद की भूमिका से कट कर जीवन और यथार्थ के कवि हैं ।

१९५३ की फरवरी में `परिमल` की ओर से नयी कविता विषयक एक गोष्ठी का इलाहाबाद विश्वविद्यालय के ओरिएण्टल हाल में आयोजन हुआ था । शम्भूनाथ सिंह, भारतभूषण अग्रवाल, जगदीश गुप्त और रामस्वरूप चतुर्वेदी ने नयी कविता की विविध समस्याओं पर उसमें पर्चे पढ़े और फिर शाम की बैठक में काव्य पाठ था ।"[५२]

सन् १९५२ में पटना आकाशवाणी की एक भेंटवार्ता में भले ही अज्ञेय जी ने नयी कविता अभिधान का प्रयोग किया हो परन्तु नयी कविता की चर्चा

सन् १९५३ में डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी और लक्ष्मीकान्त वर्मा द्वारा सम्पादित 'नये पत्ते ' नामक पत्र से ही शुरू हुई और उसे व्यापक प्रतिष्ठा देने का काम किया डा० जगदीश गुप्त और डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ।

'नयी कविता पत्रिका का १९५४ में प्रकाशन लघु पत्रिकाओं की एक लघु श्रृंखला का क्रम है । नये पत्ते, नयी कविता, निकष, प्रतिमान, जैसी पत्रिकायें परिमल वृत्त के लेखकों द्वारा आयोजित हुई ।'[५३]

सन् १९५४ में 'नयी कविता' लोक भारती प्रकाशन से प्रकाशित हुई सन् १९६३ में डा० जगदीश चतुर्वेदी ने 'प्रारम्भ' नामक कविता के संकलन के माध्यम से 'अ अकविता' की नींव डाली । कालान्तर में नयी कविता के नव्यतम रूप 'अकविता' नाम से प्रचारित करने का प्रयास अगस्त १९६६ में नेमिचन्द जैन ने किया । सन् १९६७ में 'कृति-परिचय', के संपादक ललितकुमार श्रीवास्तव ने अकविता नामक अंक निकाला ।

मुद्राराक्षस का कहना है कि 'एक संग्रह 'अकविता' के नाम से निकल रहा है लेकिन जो चीजें उसमें छप रही हैं वे नयी कविता में छपनेवाली चीजों की परम्परा में हैं ।'[५४]

वास्तव में 'अकविता' के जो संकलन सामने आये उसमें कोई विशिष्ट बात देखने को नहीं मिलती । डा० जगदीश चतुर्वेदी इसे 'एण्टी कविता' की संज्ञा देते हैं । इन संकलनों में अकविताओं के रूप में जिन कवियों की रचनायें आयीं उसमें नर्मदाप्रसाद खरे, गिरिजाकुमार माथुर, जीवनलाल 'विद्रोही', राजकमल चौधरी, भगवत रावत, जैसे नये कवि और पुरानी चाल के भी कुछ कवि एक साथ विद्यमान हैं ।

'अकविता' के कवियों ने जिस निरुद्देश्य एवं स्खलित काव्य की सृष्टि करनी चाही थी वह सफल नहीं हुई, अकविता वादी स्थापित व्यवस्था को (चाहे व काव्य की हो, समाज की हो, अथवा राजनीति की हो) तनिक भी प्रभावित नहीं कर सके। ये कवि प्राय: जीभ और जांघ के चालू भूगोल में ही उलझे रहे।'[55]

अकविता के बाद युवा कवियों का एक नया दौर आया। युवा कवि चुनाव, गणतंत्र, संविधान घेराव, स्वतन्त्रता आदि का अपनी कविताओं में प्रचुर उल्लेख करते हैं और अत्यन्त निर्मम भाव से स्थापित संदर्भों की परीक्षा करते हैं। युवा पीढ़ी के आक्रोशी कवि सुदामा पाण्डेय धूमिल, चन्द्रकान्त देवताले, लीलाधर जगूड़ी, कमलेश, श्रीराम वर्मा, विनोद कुमार शुक्ल आदि कवियों को दूसरे प्रजातंत्र की तलाश का कवि कहा गया है। 'तार सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' से प्रभावित होकर 'तीसरा सप्तक' भी सन् १९५९ में 'अज्ञेय' के ही संपादकत्व में प्रकाशित हुआ इसमें प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवरनारायण, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के वक्तव्य और कविताएं संगृहीत हैं।

'तीसरा सप्तक' का महत्व इस बात को लेकर है कि नयी कविता की सारी मान्यताएं तथा प्रवृत्तियां ठीक-ठीक और निश्चित स्वरूप में उभरकर पाठकों के सम्मुख आयी हैं।

प्रयोगवाद की सबसे बड़ी देन इस बात को लेकर है कि उसने हमें आधुनिक परिवेश में जीने के लिए 'एलर्ट' किया। आधुनिक मानव-मन की द्विधा उसके भीतर के रहस्य एकांत और उसके अनुभव चिन्तन की विभिन्न दिशाओं का बोध कराया उसने हमें आधुनिक मनोवैज्ञानिक चेतना दी। मानव जीवन के बदलते सन्दर्भ के साथ कविता में भी परिवर्तन होना आवश्यक है क्योंकि कविता लोक-जीवन की उपज है। प्रयोगवाद की सबसे बड़ी देन यह है कि उसने हमें विशिष्ट भाषा दी जिसके द्वारा आधुनिक मन की परस्पर संस्पर्शी अनुभूतियों को काव्य में मूर्त रूप देना संभव हो सका।

सम-सामयिक परिवेश

भाषा की साहित्यिक प्रवृत्तियों का विकास सामान्यत: सामाजिक, राजनैतिक, एवं आर्थिक परिस्थितियों का प्रतिफलन है। भाषा की रवानगी एवं उसका मूल्यांकन करते समय यह जान लेना आवश्यक होगा कि कौन-कौन से नये परिवर्तन हैं, जिनसे जीवन और साहित्य में नये परिवर्तन विकसित हुए हैं ? वे जीवन के साथ कहां तक घुल मिल सकते हैं। समकालीन हिन्दी साहित्य में नई कविता, नई कहानी, नई ग्रहणशीलता, नया भाव-बोध, आदि का जो नारा सुनाई पड़ता है उसके नये पन का मूल्यांकन तभी संभव है जब उस परिवेश और वातावरण का अध्ययन किया जाय जिसके बीच यह नया साहित्य रचा जा रहा है। इस दृष्टि से यदि हम नये साहित्य पर विचार करें तो पता चलेगा कि आधुनिक वैज्ञानिक औद्योगिक सभ्यता ने उसे कितना प्रभावित किया है। उसकी सारी मान्यताएं बदल गयी हैं, दृष्टियां बदल गयी हैं उसने ईश्वर से अलग होकर सनातन धर्म से कटकर मानव को और उसके विवेक को स्वतन्त्र महत्व प्रदान किया है। संयुक्त परिवारों के विघटन से पारिवारिक रिश्ते टूट गये[५६] मनुष्य तनाव एवं संघर्ष में उलझ रहा है। उसकी मन: स्थिति घुटन, संशय, अनास्था, अविश्वास और प्रश्नानुकूल मन: स्थिति है। उसका जीवन बोध बदल गया है उसकी दृष्टि में एक प्रकार की निर्ममता और निस्संगता है। उसका अप्रोच सदा स्वीकृति का नहीं अस्वीकृति का है।

१५ अगस्त १९४७ को देश स्वतंत्र हुआ हमने समझा हमें आजादी मिल गयी अब देश सुखी रहेगा। अब इस देश का बच्चा कभी भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा, कपड़ों की लाचारी में कोई चेहरा नंगा नहीं रहेगा।

अब कोई बच्चा । भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा
अब कोई छत बारिश में नहीं टपकेगी
अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में अपना
नंगा चेहरा नहीं पहनेगा।[57]

देश अनेक प्रकार की विसंगतियों से उलझ रहा था शरणार्थियों की समस्या, विदेशी आक्रमण, नेहरू और समाजवाद, औद्योगिकरण का आर्थिक व्यवस्था पर प्रभाव, सांस्कृतिक विघटन, नारी जागरण, मताधिकार आदि अनेकानेक समस्याओं की उपज होती रही । जनसंख्या में वृद्धि,भुखमरी, अकाल, निरक्षरता, घूसखोरी, अस्पतालों, कार्यालयों, स्कूलों, विश्वविद्यालयों से निकलने वाली मांगें, होनेवाले दंगे[58] नये-नये दलों का गठन, राजनीतिक दांव-पेंच आदि ने हमारे देश को खोखला बना दिया ।

सन् १९३६ के आसपास भारतीय समाज में समझौता, निराशा, गतिरोध, संघर्ष, दमन और समाज में व्याप्त, अस्तव्यस्तता, मंहगाई, बेकारी, हड़ताल , अकाल और ताला बन्दी के दिन थे । अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद भी उनकी संसदीय प्रणाली, अंग्रेजी भाषा, प्रशासन का ढांचा, कानून पद्धति, चिकित्सा पद्धति, अर्थ-व्यवस्था, सैनिक पद्धति तथा राजनैतिक प्रपंचों से हम वंचित न रह सके । राजनीति का प्रवेश हर क्षेत्र में हो गया । गांव से लेकर शहर तक चोरों और निकम्मों का बोलबाला था । गांवों में प्रधानों के पद से लेकर प्रधान मंत्री के पद तक का चुनाव होने लगा । भाई-भतीजावाद

बढ़ा, जातिवाद की बढ़ोत्तरी हुई[५६] कोई भी राजनीतिज्ञ भ्रष्टाचार, घूसखोरी, तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में सक्षम नहीं हो सका। चुने हुए लीडर कुर्सी के लिए आपस में ही लड़ने झगड़ने लगे।[६०] समाज के दुःख दर्द को पहचानने में वे असमर्थ रहे। कुर्सी परम्परागत अधिकार समझी जाने लगी।[६१] तत्कालीन साहित्य पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। नित्य-प्रति नये-नये वादे किये गये[६२] बड़े-बड़े आश्वासन दिये गये, परन्तु उसका कुछ भी हल न निकला।[६३]

भारतीय समाज में राजनीतिक और प्रशासनिक स्तर पर फैले भ्रष्टाचार ने और गंभीर बना दिया है। सत्तालोलुप राजनीतिज्ञों और संवेदन शून्य नौकरशाही को आम जनता की समस्याओं से कोई सरोकार नहीं रह गया है। राजनीतिक संस्थाएं उनकी समस्याओं को सुलझाने में असफल रही हैं।[६४] अशिक्षित व्यक्तियों को मन्त्री पद ग्रहण करने की छूट थी। भले ही वे अपढ़ हों, अयोग्य हों[६५] चुनाव जीतकर संसद में पहुंच गये।[६५] देश के दिशा-निर्देशकों ने सामाजिक सन्दर्भों की उपेक्षा तो की ही तथा साथ ही साथ राजनीतिक दांव-पेचों से जनता के सामाजिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तनों की विचारधाराओं को पंगु बना दिया।

गरीबी हटाओ का नारा लगता था परन्तु नारे बाजी ही थी। प्रश्रय अमीरों को मिलता था।[६६] टाटा संस्थान के अपराध विज्ञानी डा० डी० आर० सिंह के शब्दों में- 'गरीबी -अमीरी के बीच बढ़ती हुई खाई, बेरोजगारी में वृद्धि, सामाजिक रिश्ते का अभाव, पारिवारिक विघटन, उपभोग वादी संस्कृति का प्रसार, कानून व्यवस्था के प्रति घटता सम्मान, शिक्षा

के प्रसार से बढ़ती आकांक्षाएं क्षय होते सामाजिक, राजनीतिक मूल्यों ने इन युवकों को भीतर से हताश और खोखला कर दिया है, जिसका एक मात्र निकास उन्हें हिंसा और लूट-पाट में मिलता है।[६७] आम चुनावों की फूहड़ रणनीति सांसदिकों के झूठे आश्वासन और कुर्सी की धक्का-मुक्की ने मनुष्य को सोचने के लिए विवश कर दिया। हम पाश्चात्य सभ्यता से इतना प्रभावित हुए कि हमारा खान-पान, रहन-सहन सब विदेशी सभ्यता के रंग में रंग गया।[६८] सही गलत कैसी भी हो अंग्रेजी विद्वता का साधन समझी गयी। इस नवीनता की मोह ने भारतीय परिवारों में सेंध लगानी शुरू की। अकाल और भुखमरी ने देश को इस कदर पस्त कर दिया कि हमारी आर्थिक व्यवस्था चरमरा उठी।[६९] देश के नेताओं में गुट बन गया, स्वार्थ-लोलुप नेता एक दूसरे की टांग खींचने लगे और कुर्सी के लिए गिरगिट की तरह रंग बदलने लगे।[७०] निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या से त्राहि-त्राहि मची हुई थी। आर्थिक दुरवस्था और बेकारी ने आर्थिक दृष्टि से त्रस्त और महानगरों के फुटपाथों, चलती-फिरती लाशों और झुग्गी-झोपड़ियों के बीच, धुएं, सड़ान्ध एवं घुटन के बीच जीने वाले बेरोजगार युवकों की वृद्धि की।[७१] आर्थिक संकट से त्रस्त जनता कांग्रेसी कार्यकर्ता को उलाहना देने लगी।[७२] जनतन्त्र और समाजवाद की भी भरपूर आलोचना की गयी। जनतंत्र को भेड़िए की जुबान पर जिन्दा पाया गया।[७३] मन्दिर, मस्जिद, बौद्ध मठ आदि जिन्हें हम शान्ति का केन्द्र समझते थे वहीं अशांति की ज्वाला भभकना शुरू होती थी।

'मैंने अचरज से देखा कि दुनिया का
सबसे बड़ा बौद्ध मठ,
बारूद का सबसे बड़ा गोदाम है,
अखबार के मटमैले हाशिए पर लेटे हुए
एक तटस्थ और कोढ़ी देवता का
'शान्तिवाद' नाम है। यह हमारा देश है।[७४]

गुरुद्वारों में हथियार बनाये जाते थे ।

गांवों का सुन्दरीकरण किया जाने लगा । गांवों की नैसर्गिक छटा, हरे-भरे खेतों, बाग-बगीचों तथा कच्ची सड़कों की छाती को विदेशी तारकोल से बेलौस कर दिया गया ।[७५] उन हरे-भरे बाग-बगीचों की जगह धुआं उगलती हुई मिलें, कल-कारखाने, स्थापित किये गये । शैक्षणिक संस्थाओं में सुधार के बजाय घपलेबाजियां होती रहीं । बढ़ती हुई बेकारी से शिक्षा मंत्री भी त्रस्त हो उठे ।

"खून पसीना किया बाप ने एक जुटाई फीस,
आंसू निकल आये पढ़कर जब नंबर आये तीस ।
शिक्षा मंत्री ने सिनेट से कहा अजी शाबास,
सोना हो जाता हराम यदि ज्यादा होते पास
फेल पूत का पिता दुःखी है, सिर धुनती है माता ।
जनगण मन अधिनायक जय है भारत भाग्य विधाता ।"[७६]

सभी जगह नियम भंग हुए, संसदें बीच में ही टूटने लगीं । सामाजिक ढांचे में भी बिखराव आया, भ्रष्टाचार, बेईमानी, लूटपाट और अनाचार को प्रश्रय मिला । औद्योगिकरण से अनेक सामाजिक और पारिवारिक समस्याएं पनपीं । आर्थिक प्रगति की जगह गरीब और अमीर के बीच की दूरी बढ़ती रही । राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक मोर्चों पर हम पिट गये । छल-प्रपंच एवं कूटनीति के कारण भाषा की स्पष्टता जाती रही ।[७७] इसी लूट-खसोट, नारेबाजी, चक्कूबाजी से सुसंस्कृत विद्वानों

की जुबान पर ताला लग गया । जिस बात को वे आलंकारिक एवं व्यास शैली में कहते थे उसकी विधा तीखे एवं सचोट प्रहार में बदल गयी । जहां पर हमारे खान-पान, रहन-सहन रीति-रिवाज बदले, हम विदेशी सभ्यता से प्रभावित हुए, वहीं पर हमारी कथन की भंगिमाओं में भी बदलाव आया, अर्थाभिव्यक्ति के नये आयाम विकसित हुए, भाषा चलते- फिरते मुहावरों के निकट आयी । मैं जब इस पूरी संवेदना को 'स्ट्रीट आर्चिन कल्चर' से सम्बद्ध करता हूं तो उसके पीछे वे समस्त सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक परिस्थितियां आती हैं जिनमें सम्पूर्ण देश की मन: स्थिति खिन्नता और आक्रोशपूर्ण नपुंसकता में घुटकर पिस रही है ।[७८]

पश्चिम की औद्योगिक क्रान्ति एवं वैज्ञानिक आविष्कारों की वजह से हमारे खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन एवं बोल-चाल सभी में पर्याप्त अन्तर आता गया, इससे हिन्दी साहित्य भी अछूती नहीं रही । अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण यहां के लोग युरोपीय नुक्शे में ढल गये । हम विदेशी ढंग से सोचने लगे यही कारण है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य पर विदेशी प्रभाव की पर्त जमी हुई पायी जाती है । वास्तव में हमारे कवियों का सम्बंध इलियट, एजरापाउण्ड, ओडेन तथा स्पेण्डर से अधिक है और इन अंग्रेजी कवियों ने फ्रान्स के विभिन्न वादों का प्रभाव किंचित भिन्न रूप में ग्रहण किया है यह प्रभाव भाव का कम शैली का अधिक है ।[७६] कुछ प्रयोगवादी कवि तो पाश्चात्य कविताओं के भावानुवाद प्रस्तुत करने पर तुल गये । चिन्ता काव्य कृति जिसमें 'अज्ञेय' का वक्तव्य है उसके कुछ पद अंग्रेजी कवियों के भावानुवाद हैं और उन्होंने तीन कविताओं को निकोलस रोटिक, डी० एच० लारेंस और ब्राउनिंग की कविताओं का भावानुवाद माना है । भवानीप्रसाद मिश्र, वर्ड्सवर्थ की भाषा से पूर्णत:

प्रभावित हैं । शमशेर बहादुर सिंह अपनी भावना की भाषा में वर्लेन, लारेंस, इलियट, पाउण्ड, कमिंग्ज, हार्पकिन्स, सिटवेल, डायलन टाम्स से प्रभावित मानते हैं । प्रयागनारायण त्रिपाठी छन्द के क्षेत्र में डी० एच० लारेंस से प्रभावित प्रतीत होते हैं । केदारनाथ सिंह कविता की बिम्ब विधान योजना पर विश्वास करते हैं और मुक्तिबोध दास्तावस्की, पाल वालेरी और गोर्की में अपने को खोया हुआ अनुभव करते हैं । लेकिन प्रयोगवादियों में दर्शन पक्षीय गेटे, फ्रायड, युंग, एडलर, स्पेण्डलर, एच० जी० वेल्स, सार्त्र, कामू, कीर्केगार्द आदि का है । और चित्रण धर्म प्रतीकवादियों प्रो० मलार्मे रिम्बो, बादलेयर, बिम्बवादियों, एजरा पाउण्ड सिटवेल, ह्यूम, लीविस आदि का तथा इलियट, क्रोचे के अभिजात और अभिव्यंजना का साथ ही अति यथार्थवादियों, प्राकृतवादियों, आदि का उसमें प्रभाव ग्रहण किया गया है । प्रतीकवादी कवि एक विशिष्ट प्रतीक संकुल भाषा के माध्यम से अपनी संवेदना के अन्यतम लक्षणों को पाठकों तक सम्प्रेषित करता है । प्रतीकवादी कवि अपने भावों एवं विचारों को सम्प्रेषित करने के लिए भाषा को गढ़ते हैं यह भाषा प्रतीकों की भाषा होती है । क्योंकि विशिष्ट और रहस्यमय अनुभूतियों को तथ्य कथन की शैली द्वारा संवेद्य नहीं बनाया जा सकता, उन्हें कल्पना-चित्रों तथा व्यंजक पदावली एवं प्रतीकों के माध्यम से ध्वनित या व्यंजित किया जा सकता है ।[८०] हिन्दी के नये कवियों पर प्रतीकवाद का पूरा प्रभाव पड़ा है । युरोपीय सम्पर्क की निकटता एवं प्रभाव के कारण डार्विन, मार्क्स, फ्रायड, से एक ओर हमारा विश्वविद्यालीय पठित समाज जुड़ गया था और दूसरी ओर अंग्रेज साहित्य के माध्यम से एजरा पाउण्ड तथा टी० एस० इलियट से सम्पर्क साधे हुए था । इसी भाषिक माध्यम से अस्तित्ववादियों का प्रभाव भी पड़ रहा था ।[८१]

विम्बवाद अन्य कई शास्त्रीय आन्दोलनों की भाँति एक क्रांतिकारी आन्दोलन के रूप में उदित हुआ था। इस आन्दोलन का आरम्भ स्वच्छन्दतावाद के विरोध में हुआ था। सर्वप्रथम १६०६ में टी०ई० ह्यूम ने इस आन्दोलन की कला और साहित्य में प्रतिष्ठा की। सन् १६१२ में एजरापाउण्ड ने चित्र शैली को आधार मानकर 'रिपोस्टे' की भूमिका में इस रचना को 'इमैज' संज्ञा से अभिहित किया। टी० ई० ह्यूम के अनुसार कविता मन की भाषा को व्यक्त करने का माध्यम है। भाषा द्वारा सम्वेदना को अभिव्यक्ति मिलने के कारण विम्ब न केवल सज्जा के उपकरण मात्र हैं, बल्कि मन की भाषा का सार भी है।[८२] विम्बवादियों का विचार था कि कविता की रचना में जितने कम से कम शब्दों का प्रयोग हो उतनी ही सुन्दर कविता की सृष्टि हो सकती है, कम से कम शब्दों का प्रयोग करते हुए भी जो कविता एक पूरे चित्र को खींच सके, वही सफल कविता है। अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर आदि की कविताओं में विम्बवादी प्रभाव परिलक्षित होता है। सन् १६३६ में लन्दन में अति यथार्थवादी कला की एक प्रदर्शनी आयोजित हुई, जिसका परिचय पत्र हर्बर्ट रीड ने तैयार किया। हर्बर्ट रीड की मान्यता है कि काव्यगत अस्पष्टता कवि में न होकर स्वयं पाठक में होती है क्योंकि कवि भाषा और उपमानों की असमर्थता का अनुभव कर अपनी वास्तविक अनुभूतियों को नयी उपमाओं, नये छन्दों और नये विम्बों द्वारा अभिव्यक्त करता है।

नई कविता पर अस्तित्ववादी दर्शन का भी गहरा प्रभाव पड़ा है। अस्तित्ववादी ईश्वर में विश्वास नहीं करता अपनी संकल्प शक्ति से स्वयं अपना निर्माण करता है। नई कविता में अस्तित्ववादी दर्शन की निम्नलिखित

प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं।

आज के मानव का मन यौन-परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएं दमित हैं, कुंठित हैं, उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रान्त है। प्रयोगवाद का मूल भी पाश्चात्य काव्य से आया है। इलियट ने प्रयोग पर लिखते हुए कहा है 'प्रयोग शब्द को उन कवियों की कृति के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है जो प्रौढ़ावस्था में परिणत होते और विकास प्राप्त करते हैं।[८३] सारांश यह है कि नयी कविता द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद, मनोविज्ञान, विकासवाद, मानवतावाद आधुनिक विज्ञानवाद, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और उन्मुक्त - छन्दवाद से अधिक प्रभावित हुई है। ये सभी पश्चिम के उपज थे।[८४] नई कविता पर अमरीका के 'बीट जेनरेशन' का भी प्रभाव पड़ा है बीट जेनरेशन अमरीकी तरुणों की अश्लील वृत्ति, नैतिक या मानसिक अशक्तता और भ्रान्त जीवन दृष्टि का साहित्यिक प्रतिफलन है। 'बीट जेनरेशन का सक्रिय सृजनपरक प्रभाव राजकमल चौधरी के माध्यम से हिन्दी में आया।[८५] इस प्रकार हिन्दी की नयी कविता पर पाश्चात्य आन्दोलनों और विभिन्न प्रमुख कवियों का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। कुछ इनमें से अंग्रेजी के एम०ए० हैं, कुछ ने योरोप व अमेरिका का पर्यटन किया है, कुछ अपनी रचनाओं को विदेशी साहित्य की समरूपता में लाने के लिए जान-बूझकर सचेष्ट हैं।[८६] सबसे बड़ी बात यह है कि इन विदेशी प्रभावों से भाषा के कलात्मक सौन्दर्य को पर्याप्त निखार मिला और सबसे बड़ी उपलब्धि तो यह हुई कि कविता किसी एक निश्चित चौखटे में न बंधकर अपना प्रसार नाना भावभूमियों में करने लगी। डा० जगदीश गुप्त भी इस बात से पूर्णतया: सहमत हैं। उनका कहना है कि 'प्रयोगवाद ने अंग्रेजी के प्रभाव से शब्द प्रयोग की विविध चेष्टाओं द्वारा उसकी अर्थवत्ता को सम्बर्द्धित किया और भाषा की शक्ति के विकास की नयी दिशाओं का संकेत किया।[८७]

नयी कविता का उद्भव और विकास :

प्रयोगवाद से ही नयी कविता का आविर्भाव माना जाता है । प्रयोगवाद आरम्भ से ही कुछ विवादास्पद स्थिति में पड़ गया, क्योंकि हिन्दी के काव्य रसिक और कवि जिस प्रकार की कविता के अभ्यस्त हो गये थे उससे यह भिन्न था और जैसा कि प्रत्येक काव्यान्दोलन के सम्बंध में होता है इसका भी स्वरूप पूर्णतय: स्पष्ट नहीं था । राजनीतिक, आर्थिक,सामाजिक, धार्मिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का कुछ ऐसा आग्रह था और सन् १९३६ तक 'छायावाद' नामक काव्यधारा में ऐसा बासीपन पैदा हो गया था कि पन्त, निराला आदि भी अनुभव करने लगे थे कि इस काव्यधारा में कुछ परिवर्तन होना ही चाहिए जिसके परिणामस्वरूप कवियों का एक वर्ग ऐसी काव्य रचना की ओर प्रवृत्त हुआ जो छायावादी काव्यधारा से भिन्न थी यहां संक्षेप में हमारा उद्देश्य केवल यह बताना है कि प्रयोगवादी कविता प्रारम्भिक अवस्था में कुछ ऐसी स्थिति में थी कि उसका न कुछ निश्चित नामधाम था और स्पष्ट अ ठौर ठिकाना । छायावादी काव्य से भिन्न जो रचनाएं हो रही थीं उनमें छायावाद के प्रति विद्रोह की भावना थी और यह विद्रोह की भावना एक काव्यधारा में एक सम्पूर्ण परिवर्तन की आकांक्षी थी। नई कविता छायावाद की निरंकुश रोमांटिक भावाकुलता और कल्पना-प्रियता, प्रगतिवादी काव्य की एकांगी जीवन दृष्टि एवं स्थूलता एवं प्रयोगवाद की वर्णनाओं और शैल्पिक त्रुटियों का परिष्कार करके यथार्थ मूलक जीवन दृष्टि तथा नवीन शिल्प विधान को लेकर आविर्भूत हुई है ।[८८] परिवर्तन की यह अदम्य भावना काव्य के क्षेत्र में सम्पूर्ण क्रान्ति चाहती थी । परंपरागत काव्य रचना के हिमायती इसका विरोध कर रहे थे । और इस परिवर्तनवादी-धारा के तत्कालीन कवि विरोधों को अनसुना करते हुए अपने मार्ग पर अग्रसर

BANSI MEHTA LIBRARY ... CITY OF BATH

हो रहे थे। इस काव्यधारा में हिन्दी साहित्य की दो बड़ी हस्तियाँ डा० रामविलास शर्मा, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' प्रमुख थीं और इन दोनों के काव्यादर्श भिन्न थे। देखा जाय १९३६ से लेकर १९४७ तक ये दोनों महान कवि और विचारक कंधे से कंधा मिलाकर परंपरागत काव्यधारा के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न करने में सफल हुए और तत्कालीन मनुष्य को प्रभावित करने वाली काव्य रचना में संलग्न रहे। किन्तु डा० रामविलास शर्मा एक निश्चित विचारधारा के उद्देश्य को लक्ष्य बनाकर काव्य रचना में प्रवृत्त थे जिसे मार्क्सवादी विचारधारा कहा जाता है और 'अज्ञेय' भी एक निश्चित विचार धारा से प्रभावित होकर काव्य रचना कर रहे थे। जिसमें योरोप के प्रतीकवाद, बिम्बवाद, अतियथार्थवाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद आदि काव्यान्दोलनों और एजरापाउण्ड, टी० एस० इलियट, हापकिन्स, आडेन, डायलन टामस, एंवसन, कंमिग्स, गिन्सवर्ग आदि कवियों का प्रभाव है। डा० रामविलास शर्मा और अज्ञेय उस समय जो कुछ लिख रहे थे वह छायावादी परम्परा से भिन्न होने के कारण ७ वर्ष तक हाथ में हाथ मिलाकर चलते रहे। प्रश्न साहित्यिक नेतागिरी का भी था कि इस छायावाद से भिन्न काव्य धारा का प्रवर्तक कौन माना जाय तथा इस परिवर्तित काव्यधारा के विषय वस्तु और शैली के लिए कौन से मापदण्ड स्थापित किए जायं। निश्चित रूप से डा० रामविलास शर्मा और अज्ञेय दोनों ही स्वयं को इस काव्यधारा का प्रवर्तक मानते थे। इस प्रश्न को लेकर ऐसा समझा जाता है कि इन दोनों में कुछ मनमुटाव भी उत्पन्न होने लगा, जो स्वाभाविक ही था क्योंकि वैचारिक स्तर पर इस परिवर्तित कविता के इन दोनों कर्णधारों में काव्य रचना सम्बंधी आदर्शों का साम्य नहीं था। सन् १९४३ में प्रकाशित 'तारसप्तक' ने एक तहलका

मचा दिया, तभी डा० रामविलास शर्मा की प्रगतिवादी काव्यधारा से भिन्न इस प्रयोगवाद नामक काव्यधारा का स्वरूप, उद्देश्य, वस्तु शिल्प सभी कुछ भिन्न हो गया एक तरह से तभी इसे प्रयोगवाद नाम देकर स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया गया। यद्यपि प्रथम तारसप्तक के कवियों में डा० रामविलास शर्मा भी सम्मिलित किये गये। सन् १९४३ इस प्रकार प्रयोगवादी काव्यधारा के आविर्भाव का समय है और यह सत्य है कि प्रयोगवाद का स्वरूप उस समय बहुत कुछ स्पष्ट नहीं है, फिर भी तभी से एक स्वतंत्र काव्यधारा के रूप में इस काव्य धारा का विकास होता रहा अनेक कवियों ने इस नयी काव्यधारा के प्रति पूर्ण समर्पित रूप से इसके विकास और उत्थान में सहयोग दिया। प्रयोगवाद अपने विकास काल में ही चर्चा का विषय बना रहा इसीलिए समय-समय पर प्रयोगवादी कवियों द्वारा ही इसके स्वतंत्र व्यक्तित्व सम्बंधी स्पष्टीकरण किए जाते रहे और इसके अनेक नाम भी प्रचारित हुए। प्रयोगवाद अंग्रेजी के 'इक्सपेरिमेंटलिज्म' के वजन पर तय किया गया था किन्तु उसे रूपवाद, (फार्मेलिज्म) बिम्बवाद स्फुरणवाद, नयी कविता आदि नामों से भी अभिहित किया गया। ऐसा आभास होता है कि ११ वीं शताब्दी से लेकर १९४३ तक हिन्दी काव्य धारा में जो भी आन्दोलन हुए हैं उनमें यही अभी तक का सबसे अधिक प्राणवन्त चैतन्य और नयी संभावनाओं से युक्त एक सशक्त काव्यधारा है। यहां यही बताना हमारा उद्देश्य है कि नयी कविता प्रयोगवादी काव्यधारा का ही एक सुष्ठु एवं वैचारिक नाम है।

नयी कविता निर्विवाद रूप से आधुनिक काल की हिन्दी कविता के पंचम उत्थान प्रयोगवाद का ही एक विकसित रूप है। 'नयी कविता प्रगतिवादी

यथार्थ के आघात से उत्पन्न छायावाद के स्वप्न भंग के बाद की कविता है। जिसमें व्यक्त भावनाएं कुहासे के बीच पनपने वाले तन्द्रालस से युक्त न होकर दिन की तेज रोशनी के बीच विषमताओं से घिरे जागृत मनुष्य की भावनाएं हैं।[८९]

प्रयोगवाद का भाषागत वैचित्र्य, मनोवैज्ञानिक तटस्थता, ऐकांतिक प्रतीकों और बिम्बों की अतिवादितायें जब एक अर्से तक संस्कार परिष्कार के बाद अधिक सहज समतल भूमि पर आ गयी तो उसके इस विकास को प्रभावित करने के लिए उसे अलग नाम देना आवश्यक हो गया।[९०] कतिपय समीक्षक सम्पूर्ण छायावादोत्तर काव्य को नयी कविता का नाम देना चाहते हैं। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी छायावादोत्तर हिन्दी कविता के साथ नयी कविता को जोड़ते हैं। गिरिजाकुमार माथुर का कहना है कि- "मौजूदा कविता के अन्तर्गत वे दोनों बातें कही जा रही हैं जिनमें एक ओर या तो शैली शिल्प माध्यमों के प्रयोग होते रहे हैं या दूसरी ओर समाजोन्मुखता पर बल दिया जा रहा है लेकिन नयी कविता हम उसे मानते हैं जिसमें इन दोनों के स्वस्थ तत्वों का संतुलन और समन्वय हो। कविता में वस्तु और शैली की हम कोई वर्णाश्रम व्यवस्था मानने के पक्ष में नहीं हैं।[९१] इस परिभाषा के आधार पर नयी कविता का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो जाता है। कामायिनी भी नयी कविता के अन्तर्गत आ जाती है उनमें शिल्प और समाजोन्मुखता का समन्वय है, नये उपमानों के प्रयोग हुए हैं। डा० श्यामसुन्दर घोष नयी कविता को निराला से जोड़ने का प्रयास करते हैं। "नयी कविता की सीधी सहज धारा निराला से लेकर दुष्यन्त, अजित, केदारनाथ सिंह, कीर्ति चौधरी, नागार्जुन, त्रिलोचन, और सिद्धिनाथ कुमार तक आती है।

बीच में उस धारा से एक क्षीण धारा कटकर अलग हो जाती है, वक्र और अस्वाभाविक गति से बहती है यही प्रयोगवाद है ।[६२] डा० बालकृष्ण राव का भी यही मत है ।[६३] डा० शिवकुमार मिश्र का मंतव्य है कि सन् १९५३ ई० के पश्चात् लिखी गयी कविताओं को ही 'नयी कविता' मानना चाहिए। डा० मिश्र इसके पहले प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का नयी कविता से कोई आत्यन्तिक सम्बंध नहीं मानते ।

तीसरा मत उन समीक्षकों का है जो नयी कविता को प्रयोगवाद का विकास मानते हैं । इन विचारकों में डा० जगदीश गुप्त, डा० रघुवंश, डा० शंभूनाथ सिंह, भारतभूषण अग्रवाल, डा० रमाशंकर तिवारी, डा० राममूर्ति त्रिपाठी, गोविन्द रजनीश, डा० हरिचरण शर्मा आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं ।

जब चीज पककर स्वयं अलग हो जायेगी तो किसी को उसके विभिन्न रूप को पहचानने में भ्रम या श्रम नहीं होगा, प्रचलित अर्थ में 'नयी कविता' नाम का प्रथम प्रयोग कब कहां हुआ और उसे पहले पहल किसने किया इसकी खोज यशलिप्स करें या सत्यान्वेषी शोध छात्र ।[६४]

प्रयोगवाद की पकी हुई फसल को गुप्त जी नयी कविता की संज्ञा देते हैं, उनके अनुसार नयी कविता प्रयोगवाद का ही एक विकसित रूप है । 'कदाचित् वाद की सीमा से अनिबद्ध होने के कारण 'नयी कविता' शब्द प्रयोगवाद की अपेक्षा अधिक लोक ग्राह्य हुआ । इसके प्रभूत प्रमाण दिए जा सकते हैं कि नयी कविता प्रयोगवाद के विरोध में नहीं आयी वरन् उसको मुक्त भाव से आत्मसात् करते हुए उसका आविर्भाव हुआ ।[६५] नयी कविता सम-सामयिक

हिन्दी काव्य धारा की प्राय: सर्वाधिक स्वीकृत अभिधा है, उसने अपनी उदार बाहें फैलाकर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों की यथार्थोन्मुखी चेतना को उन्मुक्त हृदय से अपने में समाहित कर लिया।[९६] पर नयी कविता अपनी अभिव्यक्ति, प्रेषणीयता तथा उपलब्धि की दृष्टि से प्रयोगशील कविता से आगे की स्थिति है। दोनों में अनेक समान तत्व भी मिल जायेंगे पर दोनों की भावभूमि में पर्याप्त अन्तर है।[९७] विनोद गोदरे भी यही स्वीकार करते हैं। वस्तुत: नयी कविता और प्रयोगवाद सगोत्रीय हैं, प्रयोगवाद के अव्यवस्थित और असंतुलित संदर्भ नयी कविता में व्यवस्थित और संतुलित हो गये हैं।[९८] `प्रयोगवाद एक ऐसा पौधा था जिसकी शाखाएं व पत्तियां काट-छांट के अभाव में मनमाने ढंग से फैलती जा रही थीं, जब कि नयी कविता एक कटी-छटी, सजाई-संवारी लता है जिसमें व्यवस्थाएं हैं, संतुलन है और यथार्थ का रस खींचकर हरी-भरी रहने की उमंग।'[९९]

वास्तव में नयी कविता प्रयोगवाद का एक नव्यतर विकसित रूप है न तो वह प्रयोगवाद का छद्म रूप है जैसा कि डा० रामविलास शर्मा तथा नामवरसिंह[१००] मानते हैं और न वह प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद से सर्वथा भिन्न इतर प्रयत्न है जैसा कि श्रीकांत वर्मा और नरेश मेहता मानते हैं। सन् १९५५ ई० के बाद की कविताओं को नयी कविता माना जाय जैसा कि डा० शिवकुमार मिश्र मानते हैं तो अज्ञेय, शमशेर, भवानीप्रसाद मिश्र [illegible] जैसे कवियों का बहुत सा लेखन नयी कविता से तिरस्कृत हो जायेगा। विक्रम विश्वविद्यालय -उज्जैन द्वारा आयोजित आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र स्मृति व्याख्यानमाला में प्रख्यात कवि एवं समीक्षक डा० जगदीश गुप्त ने `छायावादोत्तर काव्य और नयी कविता' की चर्चा करते हुए कहा कि-`वाद

के घेरे में रहकर कविता व्यापकता ग्रहण नहीं कर सकती । हर युग की कविता की रचनात्मक भूमि में एकता है नागार्जुन , मुक्तिबोध, सर्वेश्वर दयाल नयी कविता के कवि हैं । धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' भी नयी कविता में छपा था । तीसरे सप्तक में नयी कविता प्रकाशित करने वाले अज्ञेय की मुद्रा थी कि नये कवि उनके पीछे चलें । तब मैंने उनका प्रतिवाद किया था ।[१०१]

डा० जगदीश गुप्त 'नयी कविता' को व्यापक विस्तार देना चाहते हैं उनका कहना है कि तुलसी और कबीर मार्क्सवादी नहीं थे परन्तु उन्होंने सामाजिक यथार्थ पर खुलकर चोट की । वस्तुत: साहित्य में उपजे वाद युरोप की युद्धोत्तर काल की बीमार चिन्तन की उपज है । निराला ने 'कुकुर मुत्ता' और 'नये पत्ते ' द्वारा भावी परिवर्तन का स्वरूप प्रकट किया । पंत ने गांवों को भारत माता के शरीर पर घाव कहा, परन्तु सर्वेश्वरदयाल ने गांव को विषय बनाकर देश की बात कहीं ।[१०२]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि नयी कविता प्रयोगवाद का ही एक विकसित रूप है । नयी कविता प्रयोगवाद की अपेक्षा अधिक लोक ग्राह्य हुई है । भले ही उसमें प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कवियों का योगदान है ।

नयी कविता से सम्बद्ध विविध काव्यान्दोलन :

सन् १९६० के बाद नई कविता को लेकर आन्दोलनों की एक बाजार सी खड़ी हो गयी । सन् ६० के बाद जो कविता लिखी जा रही है उसे कतिपय आलोचक नयी कविता से विच्छिन्न कर साठोत्तरी कविता नाम देते हैं ।

कुछ लोग ६० के बाद लिखी गयी कविता को नयी कविता मानते ही नहीं, ये उनकी भूल है । डा० जगदीश गुप्त सन् ६० के बाद की कविता को भी नयी कविता की श्रेणी में बिठाते ही नहीं, उसे पूर्णतया: नयी कविता से सम्बद्ध मानते हैं और साथ ही साथ अकविता आदि निरुद्देश्य एवं स्खलित काव्यान्दोलनों का विरोध भी करते हैं ।

'कविता के स्थान पर अकविता का समर्थन कदापि नहीं किया जा सकता ।[१०३] जिस देश के साहित्य में सैक्स चित्रण वर्जित रहा हो वहां यौन शब्दावली के सीधे टेढ़े प्रयोग और रति दृश्यों की बाढ़ लाकर दकियानूसी मनोवृत्ति को चौंकाने या सुधारने की सार्थकता मानी जा सकती है किन्तु काम-सूत्र, कुट्टनीमितम्, कुमारसंभव और खजुराहो के देश में यह सब बीट कविता का प्रयास बचकाना, असन्तुलित, रुग्णता सूचक, अनुकरणमूलक और अनावश्यक लगता है ।[१०४]

रूप और आकार में सातवें दशक की हिन्दी कविता नयी कविता की ही संतान सी प्रतीत होती है । उसका शिल्प नयी कविता के ही ~~विर्क~~ विकसित रूप में है परन्तु कथ्य की व्यापकता का उसमें समावेश हुआ है । रूप में वही गद्य-छन्द छोटी बड़ी पंक्तियों का स्वच्छन्द आकार तथा अनेक वाद ग्रस्त रचनाएं भी अपनी स्वरूप साम्यता में नयी कविता की ही परिवार सदस्य की कोटि में है परन्तु लम्बाई बहुत कम हो गयी है ।[१०५]

वास्तव में इन सभी आन्दोलनों को आन्दोलन नहीं कहा जा सकता इस सन्दर्भ में अज्ञेय का कथन सत्य है ' इस काल की कविताओं को बहुत सतही नजर से देखने पर लग सकता है कि नयी कविता, ताजी कविता, अकविता,

प्रति कविता, ठोस कविता और ठस कविता सब अलग-अलग आन्दोलन हैं। लेकिन ये सब एक ही प्रवृत्ति के अलग-अलग पहलू हैं।[१०६] इन नये-नये कविता नामों अथवा वादों में से कई तो विधिवत् आन्दोलन रूप में नई कविता के पतन अथवा मृत्यु की आवाज बुलन्द करते हुए घोषणापूर्वक प्रकाश में आये। यदि इन सारे नामों और आन्दोलनों की पृष्ठभूमि को गहराई से देखा जाये तो ये सभी सैद्धांतिक धरातल पर 'नयी कविता' की ही विभिन्न प्रवृत्तियों को द्योतित करते हैं। डा० जगदीश गुप्त ने नयी कविता के नाम पर चलने वाले आन्दोलनों की सूची दी है[१०७] और कुल ८८ नाम गिनाये हैं।

१- सनातन सूर्योदयी कविता
२- अपरम्परावादी कविता
३- सीमान्त कविता
४- युयुत्सावादी कविता
५- अस्वीकृत कविता
६- अकविता
७- अन्यथावादी कविता
८- विद्रोही कविता
९- चुत्कार कविता
१०- कबीर पंथी कविता
११- समाहारात्मक कविता
१२- उत्कविता
१३- विकविता
१४- अश्रु कविता

१५- अभिनव कविता
१६- अधुनातन कविता
१७- नूतन कविता
१८- नाटकीय कविता
१९- एन्टी कविता
२०- निर्दिशा मयी कविता
२१- लिंग्वादल मौतवादी कविता
२२- एब्सर्ड कविता
२३- गीत कविता
२४- नव प्रगतिवादी कविता
२५- साम्प्रतिक कविता
२६- बीट कविता
२७- ठोस कविता
२८- कोलाज कविता
२९- बोध कविता
३०- मुहूर्त कविता
३१- द्वीपान्त कविता
३२- अति कविता
३३- टटकी कविता
३४- ताजी कविता
३५- अगली कविता
३६- प्रतिबद्ध कविता
३७- शुद्ध कविता
३८- स्वास्थ्य कविता

३९- नंगी कविता
४०- गलत कविता
४१- सही कविता
४२- प्राप्त कविता
४३- सहज कविता
४४- आंख कविता

अकविता की तरह 'सनातन सूर्योदयी कविता' के आन्दोलन के अगुआ वीरेन्द्रकुमार जैन ने इस कविता की पुष्टि करते हुए नयी कविता की भर्त्सना की तथा नयी कविता की समाप्ति का घोषणा-पत्र भी प्रस्तुत किया। गंगाप्रसाद विमल जैसे कवियों ने इसका समर्थन भी किया। सनातन कविता के क्षेत्र में आनेवाली रचनाएं वास्तव में नयी कविता से भिन्न भाव-बोध अथवा स्वर सम्पन्न वाली नहीं कही जा सकतीं। 'भारती' के ही फरवरी सन् १९६५ के अंक में नयी कविता और उसके बाद - लेख में इसका नाम सिमट कर 'व नूतन कविता' हो गया। इसके बाद नूतन कविता में फिर किसी ने कसौटी नहीं की, वह अपने आप 'न-कविता' सिद्ध हो गयी और सारा सनातन सूर्योदयी आन्दोलन अस्त-व्यस्त हो गया। तथा उनका घोषणा पत्र घोषित नाम की तरह उत्खनन की वस्तु बन गया।[१०८]

अगस्त सन् १९६६ में 'रूपाम्बरा' में युयुत्सावादी नवलेखन प्रकाशित हुआ और इसी वर्ष श्रीराम सिंह शलभ का 'कल सुबह होने से पहले' नामक एक काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। मूल्यवत्ता के लिए जिस विकासमान जीवन दृष्टि की आवश्यकता है उसका इसमें अत्यन्त अभाव है। ये कवि मूल चेतना को पकड़ पाने में असमर्थ रहे। कविता की विशेषताओं से निरस्त अग्राह्य रचना के अर्थ में 'अकविता शब्द नयी कविता के संयुक्तांक (१९६०-६१ में प्रयुक्त हुआ था।

अकविता का नेतृत्व डा० श्याम परमार ने किया । पहले पहल मुद्रा राक्षस ने भी इसका समर्थन किया फिर बाद में इसके विरोधी हो गये । अतएव अकविता कविता-विरोधी शब्द नहीं रह गया । उसे `एन्टी` या नान पोएट्री` कहना भी उतना ही गलत है जितना कि यह आरोपित करना कि अकविता में कविता नहीं है ।[१०६] अकविता में जहां कहीं भी कुछ अच्छा लगता वह नयी कविता के अनुरूप ही । `अकवितावादियों ने भले ही कविता से अलगाने के लिए अकविता नाम दे दिया, किन्तु किसी मौलिक आधार पर वे अकविता से कविता को अलग नहीं कर सके । उनके पास कोई मौलिक दृष्टि नहीं है इसलिए अकविता के नाम पर या तो कविता छापते हैं या घटिया कविता ।[११०] सतीश जामाली ने अपने काव्य संग्रह `एक और नंगा आदमी` में उन्होंने `शिवलिंगों की माला पहनना, टट्टीखाना, पेशाब पीना, बूढ़ी औरत की सड़ी योनि से मक्खियां चुनकर चबाना आदि क्रियाओं का प्रभावोत्पादन गत विशेषता लाने के लिए प्रयत्नपूर्वक समावेश किया है ।[१११]

हिन्दी की `बीट कविता` कुत्सा प्रधान कविता है वह उतनी ही भोंडी है जितना किसी को सीधे गाली दे देना । बीट कवियों का भी कोई जीवन दर्शन नहीं है । बीट कविता में पतनोन्मुख प्रवृत्तियों को सैद्धान्तिक समर्थन देने की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चेष्टा की गयी है । गांजा एवं चरस पीना, मन में `क्रिपी हैटरो, से क्वालिटी खोज निकालने वाली नशीली दवाओं का उपयोग, यौन विकृतियों की भोंडी आलोचना की गयी है ।

इलाहाबाद से लक्ष्मीकान्त वर्मा ने जुलाई १९६५ में क,ख,ग,पत्रिका

के माध्यम से `अस्वीकृत-कविता`-की-नींव-डाली-+ `ताजी कविता` की नींव डाली और १९६६ में श्रीराम शुक्ल ने जुलाई `उत्कर्ष` के माध्यम से `अस्वीकृत कविता` की नींव डाली । `उत्कर्ष` में मरी हुई औरत के साथ `संभोग` नामक अस्वीकृत कविता छपी थी । डा० विमल पाण्डेय ने इसके वैचारिक पक्ष पर विचार किया । `प्रस्तुत युग में व्याप्त यथार्थ होते हुए भी अस्वीकृत विशिष्ट संवेगों, स्थितियों, मूल्यों, असंगतियों और मूड की सम्प्रेषक कविता है । अस्वीकृत रहने के बावजूद तथ्य - तथ्य ही है अस्वीकृत कविता उसी को प्रस्तुत करती है ।[११२]

इन आन्दोलनों के कवियों में एक दम बड़े कवि बनने और बाद के संचालक बनकर प्रतिष्ठा प्राप्त करने की बलवती जिज्ञासा पायी जाती है । इन कवियों के अपने काव्यान्दोलनों के समर्थन में दिए गये वक्तव्यों विचित्र तर्कों के पर्यालोचन से स्पष्ट हो जाता है कि निराधार और असंगत अथवा मनगढन्त धारणाओं की स्थापना के लिए व्यक्ति को भाषा की खींचतान की किस सीमा तक जाना पड़ता है । मुद्राराक्षस का कहना ठीक ही है कि `एक संग्रह अकविता` के नाम से निकल रहा है लेकिन जो चीजें उसमें छप रही हैं वे नयी कविता में छपने वाली चीजों की परम्परा में है ।[११३] डा० कान्तिकुमार का कहना है कि `अकविता` के कवियों ने जिस निरुद्देश्य एवं स्खलित काव्य की सृष्टि करनी चाही थी वह सफल नहीं हुई । अकविता वादी स्थापित व्यवस्था को चाहे वह काव्य की हो, समाज की हो, अथवा राजनीति की हो तनिक भी प्रभावित नहीं कर सके । ये कवि प्राय: `जीभ और जांघ` के चालू भूगोल में ही उलझे रहे ।[११४]

इन आन्दोलनों के कवियों ने कामुक यथार्थ, जीवन के यौन संदर्भों का, अश्लील तथ्य का सत्य उद्घाटन, मानव जाति की आदिम वासना का विरूपीकरण, नारी पुरुष तथा पुरुष-पुरुष के यौनाचार सम्बन्धों का कुमुदित रूप वर्णन करने में सफलता हासिल की । इनकी कविताओं में शहरों की सभ्यता के घृणित बिम्ब, काम कुंठाओं के अश्लील प्रतीक, स्त्री-पुरुष के गोपनीय अंगों की सपाट भाषा तथा अतुकान्त एवं बिखरी काव्य गठन भंगिमाएं दृष्टिगोचर होती हैं । इस प्रकार नयी कविता का विकास सीधी सरल रेखा में न होकर वक्र रेखाओं में ही हुआ है और उसकी भूमिका और परिणति से सम्बद्ध बहुत से आन्दोलन सही अर्थों में उसके रूप भी नहीं कहे जा सकते ।

सन्दर्भ- सूची

१- दूसरा सप्तक, सं० अज्ञेय वक्तव्य, हरिनारायण व्यास, पृ० ६१

२- दूसरा सप्तक भूमिका सं० अज्ञेय, पृ० ११

३- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, भाषा संवेदना, पृ० ६७

४- चक्रवाल, दिनकर, पृ० ७१

५- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६१४

६- आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, `कवि निराला` पृ० १०

७- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, भाषा और संवेदना, पृ० ५६

८- प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२८

९- निराला : प्रबन्ध पद्म, पृ० १५८-५९

१०- महादेवी वर्मा, गीत पर्व, वैचारिकी, पृ० १६

११- डा० विजयदेव नारायण साही, पाश्चात्य प्रभावों के सन्दर्भ में, काव्यभाषा की समस्याएं, आलोचना अक्टूबर-दिसंबर-१९७२, पृ० २४

१२- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, भाषा और संवेदना, पृ० १२

१३- पंत : युगवाणी, पृ० २४

१४- पंत : कला और संस्कृति, पृ० १३

१५- पंत : आधुनिक कवि की भूमिका-चरण चिन्ह, पृ० ९

१६- पंत : पल्लव की भूमिका, पृ० १०

१७- पंत : पल्लव की भूमिका, पृ० १०

१८- पंत : साठ वर्ष एक रेखांकन, पृ० ३३

१९- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ६४२

२०- ग्राम्या - पृ० १०३

२१- पंत : वाणी, पृ० ८७

२२- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, कविता यात्रा, रत्नाकर से रघुवीर सहाय तक, पृ० ४७

२३- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, रत्नाकर से रघुवीर सहाय`पृ० ५७-५८

२४- वृहत्त्रयी-डा० विजयबहादुर सिंह, प्रथम सं० १९७५ ,पृ० ६७

२५- निराला- परिमल, पृ० २४

२६- द्रष्टव्य-आचार्य वाजपेयी, हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी, पृ०६७

२७- डा० कामेश्वर प्रसाद सिंह, प्रसाद की काव्य प्रवृत्ति, पृ० ६३

२८- डा० जगदीश गुप्त, कवितान्तर, पृ० ५०

२९- आधुनिक हिंदी कविता : पृ० आलेख-९-१०
सं० डा० जगदीश चतुर्वेदी

३०- निराला : परिमल, पृ० ११७

३१- डा० राजेन्द्र मिश्र, नयी कविता की पहचान, पृ० १७

३२- दिनकर- चक्रवाल, पृ० १९

३३- वही- पृ० २०

३४- वही, पृ० २७

३५- वही, पृ० ७३

३६- मलयज : कविता से साक्षात्कार, पृ० १४६-४७

३७- डा० विजयदेव नारायण साही, नयी कविता संयुक्तांक, ५-६ पृ० ६९

३८- बच्चन, निकट से, सं० अजितकुमार और ओंकारनाथ श्रीवास्तव,पृ०१०१

३९- वही- पृ० १७४

४०- अभिनव सोपान, बच्चन(भूमिका पन्त) पृ० ३२

४१- काव्य की भूमिका, दिनकर- पृ० ४९-५०

४२- नई कविता संयुक्तांक(५-६) १९६०-६१ पृ० ८२

४३- रामेश्वर शुक्ल `अंचल`, आधुनिक कवि, पृ० ६

४४- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी : कविता यात्रा : रत्नाकर से रघुवीर सहाय,
पृ० ६३

४५- गिरिजाकुमार माथुर, नयी कविता सीमाएं और संभावनाएं, पृ० ६
४६- डा० हरिचरण शर्मा- परंपरा और प्रगति की भूमिका पर ,पृ०३२
४७- डा० नगेन्द्र : आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां ।
४८- शिवदान सिंह चौहान -`काव्यधारा` पृ० ४४
४९- नयी कविता : नया मोड़- केदारनाथ सिंह
नया पथ- सं० यशपाल- पृ० २४
५०- डा० कान्तिकुमार -`नयी कविता` पृ० १२
५१- `नयी कविता` संयुक्तांक ५-६, सं० डा० जगदीश गुप्त,पृ० २-३
सन् १९६०-६१
५२- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी-`नयी कविताएं एक साक्ष्य, पृ० १३
५३- वही- पृ० १४
५४- वीणा- अगस्त, १९६६ - पृ० ४७४
५५- नयी कविता- डा० कांतिकुमार, पृ० २६
५६- वृद्ध माता-पिता । उद्भ्रान्त सभ्यता
और जीविका की अनेक समस्याएं
मैं निरीह घूमता हूं,
तुम्हारे धर्म का कवच
मैंने उतार फेंका है ।
- योगेन्द्र किसलय-प्रारमती परछाइयां-कविता-सं० १७
५७- `धूमिल-`पटकथा` संसद से सड़क तक- पृ० ११०
५८- और मैं सोचने लगता हूं कि इस देश में
एकता युद्ध की और दया
अकाल की पूंजी है
क्रांति-----------
यहां के असंख्य लोगों के लिए
किसी अबोध बच्चे के हाथों की जूजी है ।
`धूमिल` संसद से सड़क तक` पृ० २०

५९- जब मिलो तिवारी से हंसो, क्योंकि तुम भी तिवारी हो,
जब मिलो शर्मा से हंसो क्योंकि वह भी तिवारी है,
जब मिलो मुसद्दी से खिसियाओ ।
रघुवीर सहाय-`आत्म हत्या के विरुद्ध`, पृ० १७

६०- पहले लोग सठिया जाते थे । अब कुर्सिया जाते हैं,
मेरे दोस्त । भारत कृषि प्रधान नहीं
कुर्सी प्रधान देश है ।
मदनलाल डांगा-`धर्मयुग` १० दिसम्बर १९७२

६१- कुर्सी झट से मिल जाय । जब नेता लुप से दामाद
चुन ले मनपसंद। भाई हवाई जहाज पर बरयि
भतीजा पानी के पोत पर इतराय ।
- देवेन्द्रकुमार-`खासकर उन्हीं अर्थों में ।

६२- हां, यह सही है कि इन दिनों
मन्त्री जब प्रजा के सामने आता है,
तो पहले से कुछ ज्यादा मुसकराता है,
नये-नये वादे करता है(पृ० १३७) `संसद से सड़क तक``धूमिल`

६३- हम ले चलेंगे । हम ले चलेंगे
चिल्लाते मिलते हैं,
बस अड्डे पर कुली। मंच पर नेता
देखते ही देखते सिर पर से बक्स गायब हो जाता है
और मंच से जवाब ।

६४- धर्मयुग- पृ० २६(२७ दिसम्बर से ३ दिसम्बर)

६५- जब समाजवादी दल खोज रहा था लड़के
मन्त्री बनने के लिए अगली सरकार में
मैं भीड़ में खोज रहा था रामलाल
वही मिल जाय अगर मुझको न मिले तो
रघुवीर सहाय- आत्महत्या के विरुद्ध पृ० ४६

६६- गरीबी हटाओ सुनते ही
वे कब्रिस्तानों की ओर लपके
और मुर्दों पर पड़ी चादरें
उतारने लगे ।
कुआनो नदी-सर्वेश्वर-पृ० ३५

६७- धर्मयुग-(२७ दिसम्बर से ३ दिसम्बर)१९८३ पृ० २६

६८- डाले कमर में हाथ । सड़क पर आलिंगन बद्ध
पिता यहां, पुत्री क वहां । मां थोड़ी दूर है
सागर तट लम्बा है ।
दशक की शाम, सुरेन्द्र तिवारी, पृ० ४६

६९- उस मुहावरे को समझ गया हूं,
जो आजादी और गांधी के नाम चल रहा है,
जिससे न भूख मिट रही है,
न मौसम बदल रहा है,
लोग बिल बिला रहे हैं, पेड़ों को नंगा करते हुए,
पत्ते और छाल खा रहे हैं ।
'धूमिल' संसद से सड़क तक, पृ० १८

७०- मैंने देखा हर तरफ रंग बिरंगे झण्डे फहरा रहे हैं,
गिर गिट की तरह रंग बदलते हुए
गुट से गुट टकरा रहे हैं,
वे एक दूसरे को दांता किल-किल कर रहे हैं,
एक दूसरे को दुर-दुर, बिल-बिल कर रहे हैं।
-`धूमिल` संसद से सड़क तक, पृ० १२६

७१- नौन तेल लकड़ी की फिक्र में लदे घुन से
मकड़ी के जाल से, कोल्हू के बैल से
मकां नहीं रहने को फिर भी हैं घुन से
गन्दे अँधियारे और बदबू भरे दड़बों में
जनते हैं बच्चे।
`तारसप्तक` डा० रामविलास शर्मा

७२- इन्होंने कुछ नहीं किया,
हाथ आयी तकली में `फ` भर जुड़ने दिया।
`नुक्कड़ पर घूरे ने कहा `-श्रीराम वर्मा

७३- उन्होंने जनता और जरायम पेशा औरतों के बीच
सरल रेखा को काटकर। स्वस्तिक चिन्ह बना लिया है
और हवा में एक चमकदार गोल शब्द
फेंक दिया है `जनतंत्र`
जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या होती है
और हर बार वह भेड़ियों की जुबान पर जिंदा है
`धूमिल`- संसद से सड़क तक- पृ० ४८

७४- वही- पृ० ११३

७५- सुनो-सुनो
यहीं कहीं एक कच्ची सड़क थी
जो मेरे गांव को जाती थी ।
अब वह कहां गई ?
किसने कहा उसे पक्की सड़क में बदल दो
उसकी छाती बेलौस कर दो
स्याह कर दो यह नैसर्गिक छटा
विदेशी तारकोल से
- सर्वेश्वर, `बांस का पुल` पृ० ४४

७६- `नागार्जुन`- नई कविता - सं० डा० वासुदेवप्रसाद, पृ० १०१

७७- भाषा उस तिकड़मी दरिन्दे का कौर है,
जो सड़क पर और है। संसद में और है,
इसलिए बाहर आ । सड़के अंधेरे से निकल
सड़क पर आ ।
-`धूमिल` संसद से सड़क तक, पृ० १०५

७८- लक्ष्मीकांत वर्मा- आलोचना,जनवरी-मार्च १९६८ सं० नामवर सिंह

७९- डा० रघुवंश, हिंदी काव्य की प्रवृत्तियां, पृ० २०

८०- डा० रमाशंकर तिवारी, प्रयोगवादी काव्यधारा,
चौखंभा विद्या भवन,वाराणसी,पृ०३६३

८१- डा० अरविन्द- सप्तक काव्य, पृ० ८

८२- टी० ई० ह्यूम-`स्पेकुलेशन्स` पेज-१३४

८३- गोविन्द रजनीश, समसामयिक हिंदी कविता-विविध परिदृश्य,पृ०३५

८४- डा० विजय द्विवेदी,`नयी कविता प्रेरणा एवं प्रयोजन,पृ०३६

८५- डा० जगदीश गुप्त- नयी कविता स्वरूप और समस्याएं-पृ० २२८

८६- डा० रमाशंकर तिवारी, प्रयोगवादी काव्यधारा, पृ० ४२६

८७- डा० जगदीश गुप्त-`कवितान्तर`, पृ० ५५

८८- डा० विजय द्विवेदी-`नयी कविता प्रेरणा एवं प्रयोजन`पृ० १२७

८९- डा० जगदीश गुप्त- नयी कविता स्वरूप और समस्याएं-पृ०१६३

९०- नयापथ पत्रिका- सं० यशपाल, शीर्षक-`नयी कविता नया मोड़` लेखक-केदारनाथ सिंह ।

९१- गिरिजाकुमार माथुर, नयी कविता- अंक-१, पृ० ७६

९२- डा० श्यामसुन्दर घोष, नयी कविता का स्वरूप, पृ० ६

९३- द्रष्टव्य- कल्पना-१९५६-`नयी कविता निबंध माला`

९४- डा० जगदीश गुप्त- कवितान्तर, पृ० ५६

९५- डा० जगदीश गुप्त- नयी कविता स्वरूप और समस्याएं, पृ० १७०

९६- डा० जगदीश गुप्त- कवितान्तर, पृ० ३४

९७- डा० रघुवंश, साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, पृ० १६१

९८- विनोद गोदर- छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत, पृ० १६४

९९- डा० हरिचरण शर्मा- नयी कविता नये धरातल, पृ० ६

१००- नामवर सिंह- आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां- पृ० १३०

१०१- हिन्दी साहित्य सम्मेलन का मुख पत्र- सं० प्रभात शास्त्री, १५ जनवरी १९८४, पृ० ४

१०२- वही- ,, ,, पृ०४

१०३- डा० जगदीश गुप्त, कवितान्तर, पृ० ८

१०४- डा० जगदीश गुप्त, नयी कविता- अंक-८ पृ० २५३

१०५- नई कविता के बाद- ओमप्रकाश अवस्थी, पृ० ६

१०६- आठवीं भारतीय कलम कांग्रेस के तत्वावधान में आयोजित `स्वातंत्र्योत्तर भारतीय कविता`- गोष्ठी के अध्यक्ष पद के भाषण से उद्धृत ।

१०७- डा० जगदीश गुप्त- नयी कविता स्वरूप और समस्याएं-पृ० २२

१०८- डा० जगदीश गुप्त-`नयी कविता` अंक-८,१९६६-६७ पृ० २४९

१०९- डा० श्याम परमार`अकविता और कला संदर्भ`- पृ० ६

११०- रामदरश मिश्र, धर्मयुग-४ दिसम्बर १९६६ पृ० ५८

१११- डा० जगदीश गुप्त- नयी कविता : अंक-८,पृ० २७६

११२- विमल पाण्डेय, अर्थ-३,मई १९६६

११३- वीणा- अगस्त-१९६६-पृ० ४७४

११४- डा० कान्तिकुमार- नयी कविता- पृ० २९

--